[भाग—एक]

प्रथम संस्करण—नवम्बर '७७—१०००

कीमत—तीन रुपये

इसके आगे भाग दो में पढ़ें।

मुद्रक—भारती प्रिन्टिंग प्रेस
कटिहार (बिहार)



आदिवासियों

का

कुलधर्म

आदि शक्ति

का

आदि मार्ग दर्शक

मैं, कुल ज्ञानी कोल, आदित्य की सन्तान हूँ।

'रामो'

मूल्य—२.०० रुपये

'नारी'

यह किसने कहा, हे अर्धनारीश्वर ।
कि नारी रुप है तेरा अबला ॥१॥
यह किसने कहा; किस्मत में ।
केवल है आंसुओं का बुलबुला ॥२॥
कहा होगा किसी ने यहां ।
देखकर समाज का सिलसिला ॥३॥
जाना नहीं वे सृष्टि तेरा ।
आखिर सब तो है मनचला ॥४॥

—रामो



सुवर्ण

कुल का ज्ञानी को कोल कहते हैं। कुल से सम्बन्धित कुल; कोल, कौल पर्यायवाची (Synonyms) शब्द हैं। एक अच्छे खानदान, अच्छे कुल के नर को कोल कहते हैं और नारी को कुलीन कहते हैं। और इसी कुल के लिये ही प्रयुक्त होते हैं, जो कुल को सिलसिला को कुल धर्म के सहारे अत्यन्त पवित्रता के साथ कायम रखते हैं।

—रामो



PREFACE

In expressing any views regarding this book, I like to impress upon the readers, that God is the Supreme Spirit of all the Spirits in the Universe.

Incarnations were the Super Spirits of the Supreme Spirit.

We and our aneestors are the spirit of the supreme spirit. We are connected; to super and the supreme.

In such cireumestances, worshiping of the aneestral spirits in lower level. by a son spirit meens the worshiping of the supreme and super spirits.

So the ancient practice of worshiping the aneestral spirits by the descendants of Kol Adibasis is not only logical but chronological and is the best among all the practice of worshiping in the world.

Because in the lower level the spirit can worship the spirit only and then the spirit through the spirit can worship the super spirit and lastly the spirit, through the spirit

and super spirit can rightly worship the supreme spirit.

This fits well with the prevalent saying that "Like can mix with the likes only".

The processes of worshiping and experiencing the spirits, super spirits and supreme spirit has been very well explained by my younger brother, Shri Ramo Birua, in this book "Kulachar".

I wish him success in revealing the secrets of this "Kulachar" more and more in future.

I also expect the readcrs will be highly benefited with the Diwine Knowledge by the study of this book.

Shri Rameshwar Birua
Additional Superintendent
Commercial Taxes,
Katihar (Bihar)

— दो शब्द —

यह पुस्तक प्रकाशन के करीब दो वर्ष पहले ही पाण्डुलिपि में तैयार हो चुकी थी। वर्त्तमान में प्रचलित बहुत से धार्मिक धारणाओं के बिलकुल ही बिपरीत होने के कारण मुझे इस बात की शंका थी कि शायद ये बातें किसी के लिए अनुपयुक्त न हो जाएँ।

इस कारण पुस्तक को सर्व प्रथम संवैधानिक दृष्टि से परीक्षण के लिए श्री देवेन्द्र नाथ चम्पिया; तत्कालीन विधान सभा सदस्य, चाईवासा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया था। प्रथम अध्ययन में हो इस पुस्तक में अंकित सतों से वे इतना प्रभावित हो गये थे कि वे इस पुस्तक को शीघ्र ही प्रकाशित करने का सलाह दिये थे।

पुनः इस पुस्तक के कुछ अंशों को, श्री जेना बाबू, नन्दी प्रिन्टिंग प्रेस, महुल साई रोड, चाईवासा को भी इस दृष्टि से परीक्षण के लिए दिया गया था कि पुस्तक में अंकित बातें, कहीं प्रेस नियमों के विरुद्ध तो नहीं है। पढ़कर वे तो अपने ही प्रेस में सस्ता छापने के लिए तैयार हो गए थे।

इस तरह के परीक्षण के बाद, सचिव, कार्मिक विभाग बिहार, पटना को प्रकाशित करने की अनुमति के लिए आवेदन किया गया था। किन्तु दुर्भाग्यवश इसमें बहुत विलम्ब हो गया।

तब तक यह पुस्तक पाण्डुलिपि में ही एक हाथ से दूसरे हाथ में जाता रहा। श्री रामेश्वर विरुवा; अपर अधीक्षक, वाणिज्य कर विभाग, कटिहार ने भी पुस्तक को पढ़कर शीघ्र ही प्रकाशित कराने का सिफारिश की थी।

सबसे अन्त में श्री अखिलेश्वर प्रसाद सिंह, अञ्चल अधिकारी, बायसी, पूर्णियां को माह नवम्बर '७७ के प्रथम सप्ताह में पढ़ने का मौका मिला था। वे तो पढ़कर इतना बेताब हो कहने लगे थे कि "ऐ महाराज; इस पुस्तक को अभी तक अप्रकाशित अवस्था में क्यों रखे हुए हैं? चलिए इसे शीघ्र छपवाईये।" उन्होंने स्वेच्छा से व्याकरण के कुछ गलतियों को भी सुधारा था।

यह पुस्तक जैसे लिखी जा रही थी, वैसे-वैसे श्री सम्पत लाल वैद्य, प्रकाश मेडिकल, बाईसी को पढ़ने के लिए समय समय दिया गया था। वे कुछ अंगों को अपने एक अलग अभ्यास पुस्तिका में उतार लेने और कभी तो जैन धर्म के पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने के लिए भी आग्रह करने लगते थे।

उपरोक्त महानुभावों के सिफारिशों एवं सहयोग के लिये मैं बहुत-बहुत आभारी हूँ।

अब यह पुस्तक भारती प्रिन्टिंग प्रेस, कटिहार के प्रबन्धक एवं कर्मचारियों के अथक परिश्रम एवं सहयोग के बाद मुद्रित होकर आपके सामने है। इस पुस्तक की बातें किसी एक समय में नहीं लिखी गई हैं। जब कभी दैविक

संकेत मिले हैं; उसे उसी समय उतारा गया है। सारी बातें एकदम एकान्त स्थान एवं अत्यन्त पवित्र वातावरण में लिखी गई हैं। इसलिए पाठकों से अनुरोध है कि इसका अध्ययन उसी तरह के वातावरण में करें तो अच्छा है। अन्य समय में भी अध्ययन की मनाही नहीं है। यह भी उल्लेखनीय है कि सरकारी कामों के निर्धारित लक्ष्यों को बराबर पूरा करते हुए ही यह पुस्तक लिखी गई है।

अन्त में मैं सभी तपके के पाठकों से अनुरोध करूँगा कि अध्ययन के क्रम में इस पुस्तक में कोई असंगत बातें ध्यान में आवें तो उसे केवल अपने मन में नहीं रखें। वरन यथाशीघ्र मेरे पास तक पहुँचाने की कोशिश करें। इससे मुझको खुशी होगी। ऐसे में पुनः दैविक संकेत प्राप्तकर सही बातें हो पुनः आपके समक्ष प्रस्तुत करने में मुझको सहुलियत होगी।

विनीत—

"रामो"





रामो बिरुवा, उप-समाहर्त्ता
बी०ए० (आनर्स) एम०ए०

विषय-सूची

प्राकथन

मैं कोई विद्वान नहीं हूँ। मैं कोई ज्ञानी नहीं हूँ। लिखने की प्रेरणा भी अपनी नहीं है।

लिखने की प्रेरणा श्रीयुक्त मुरारी पाठक, रीडर, भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया से मिली है और ज्ञान कुलेश्वरी का है।

इस कारण जो कुछ भी मैंने लिखा है गलत या सही, उसके वही मालिकिन जिम्मेवार है। सही होने का भी मैं दावा नहीं करता हूँ। हाँ, इतना विश्वास दिलाता हूँ कि आपके सवालों को सही उत्तर के लिए प्रेरक के पास, मैं अवश्य प्रस्तुत करूँगा।

किन्तु मैं संसारियों से, धार्मिक विद्वानों से यह अवश्य जानना चाहता हूँ कि क्या........... ... ।

उत्तराधिकारी, पुत्र एवं पुत्री के साथ, माता-पिता का प्यार भरा सम्बन्ध भाई के साथ भाई का, बहन के साथ बहन का या भाई के साथ बहन का, सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध, पति का पत्नि के साथ, पत्नि का पति के साथ, का प्रेम भरा सम्बन्ध धरती पर जीवित अवस्था तक ही सीमित रहना चाहिए? और क्या........धरती से स्वर्ग तक या ईश्वर तक प्रसारित (extended) नहीं किया चाहिए? अगर नहीं, तो संसार को इसका कारण बतलाइए। कुछ धर्माव-

लम्बी कहते हैं कि मरने के बाद कुछ नहीं होता है। तो ऐसे में धर्म का नाम जिन्दगी भर रटने से क्या मतलब है ?

कुछ धर्मावलम्बी यह बतलाते हैं कि उसके धर्म के लोग मरने के बाद स्वर्ग पहुँचते हैं, बिल्कुल ठीक है। इसका मतलब तो यह हुआ कि धरती पर अस्तित्व (Earthly existence) खतम होने के बाद, स्वर्गीय अस्तित्व (Heaventy existence) का आरम्भ होता है। याने अस्तित्व कभी खतम होता ही नहीं है। तो क्या……उस अग्रगामी स्वर्गवासी के साथ उसी के परिवार के या उसी के कुल के उत्तराधिकारी धरती वासियों को, सम्पर्क बनाये रखना उचित नहीं है ?

धर्म के पंडित, धर्म के ठीकेदार, मनमौजी धार्मिक कानून बनाकर, कुल के अग्रगामी स्वर्गवासियों के साथ सम्पर्क बनाये रखने से, उसी के कुल के धरती वासियों को क्यों वंचित रखना चाहते हैं ?

अगर कोई वंचित रखने का कारण समझा दें, तो सारा के सारा यह मेरा मत गलत है और नहीं तो कुल धर्माचरण के सिवाय अन्य धर्माचरण की लोगों को कोई आवश्यकता नहीं है।

मुरारी का प्रणय
एक कुल योगी
"रामो"

हरि ओम

अदृश्य दिव्य माँ
और
दृश्य प्राकृत माँ
कोमल चरणों में अर्पित

नारी, पूजा के पात्र है। पात्र व्यभिचारी के पात्र नहीं है।

कुलीन नारी के साथ जो कोई भी दुर्व्यवहार करता है, वह निश्चय ही कुलेश्वरी से उचित दण्ड पाता है।

कहता हूँ सुनो हे लोगों,
मैं एक छोटा व्यक्ति।
पढ़कर हृदयंगम कर लो,
माँ से निकली यह पक्ति।
अपनी पत्नि को छोड़कर,
माँ तुल्य है हरेक युवती।

"रामो"

गुरु बन्दना

नमस्कार करो जी; धन्यवाद कहो जी, उस गुरु को।
जो शिक्षा देते चेलों को, और कभी तो अन्य गुरुओं को ॥१॥
"आदिवासी हैं तन के काले, मगर हैं मन के उजले'
राँची कॉलेज के विभाग भूगोल के थे प्राध्यापक।
प्यारा सा शुभ नाम है इनका श्री मुरारी पाठक ॥२॥
छोटानागपुर के पहाड़ियों में वे पढ़ाते थे भूगोल।
यह राजा डेरा, यह हुँडरु यह है, दशम फॉल ॥३॥
बड़ी उबड़-खाबड़ है जी छोटानागपुर की भूमि।
परन्तु बड़ी समतल है आदिवासी दिलों की जमीं ॥४॥
ऐसे गुरु जिसने तराई संग दिलों को पहचाना।
दिल से और दिमाग से आदिवासियों को पहचाना ॥५॥
नमस्कार करो जी, धन्यवाद कहो जी, उस गुरु को।
जो शिक्षा देते चेलों को, और कभी तो अन्य गुरु को ॥६॥
"आदिवासी हैं तन के काले, मगर हैं मन के उजाले"

नोट :- दिलों की जमीं = Surface of the heart

आदि शक्ति का आदि मार्ग दर्शक

सभी धर्मों का आधार

सनातन धर्म

(Eternal Religion)

कुल धर्म ही है।

पर संसार मे सनातन है क्या ? ... ...

सृष्टि के तीन नियम, (१) उत्पत्ति या जन्म (appearance) (२) स्थिति या जिन्दगी (existance) (३) लय या मरण (dissolution); सनातन है। वे नियम सभी जीवों पर एक समान लागु होते हैं। आदमी शरीर को प्राप्त करने के कारण, सृष्टि (creation) के उन तीन नियमों को संचालन करने वाले का ज्ञान अभी हासिल कीजिए। क्यों कि उपनिषद के ऋषि (Seer) याने संचालक को देख सकने वाले, के मुताबिक :—

"पुनः मातः पुनः क्षेत्र, पुनः वित्तं पुनः गृहम
पुनः शुभ अशुभं कार्यं, न शरीर पुनः पुनः"

बिना ज्ञान के, अनपढ़ या विद्वान, धनी या गरीब, राजा या प्रजा, इस जीवन क्रम को, सृष्टि के तीन सनातन नियमों के द्वारा संचालन करने वाले, महाशक्ति Supreme Power, के कौन कितना निकट हैं, जाना नहीं जा सकता

है। इस संबंध के ज्ञान द्वारा अपने को अपने कुल को समझने मे, और अपने को एवं अपने कुल को, उनसे ही सम्बद्ध करने में आपको आसानी होगी।

नोट:—ज्ञान से मतलब विवेक ज्ञान।

—:०:—

अपनी पृथ्वी के बारे मे,
अपने ही बारे में।

आँखों के सामने वृहत आकार के ग्रहों, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, शुक, वृहस्पति इत्यादि और बहुत दूर के अनगिनत तारेगण इस सौर्य मण्डल के परिवार हैं।

अगर कोई ऐसा जहाज होता, जो तारों के बादलों के उस पार जा सकता, तो शायद एक और सौर्य मण्डल देखा जा सकता है। इस तरह के इस वृहत् ब्रह्माण्ड Extensive Univrse) मे, कितने और सौर्य-मण्डल है, कहा नही जा सकता है।

इतने विशाल ब्रह्माण्ड में पृथ्वी एक गेंद मात्र से अधिक नहीं मालुम पड़ती है। और हमारी गेंद मात्र पृथ्वी के उपर एक आदमी, एक धूल के कण मात्र के परिमाण में भी है या नहीं? खुद ही अन्दाज कर लीजिए। फिर भी इस छोटे से कण स्वरुप आदमी का

घमण्ड इतना अधिक है, कि बेचारा अपने अस्तित्व (existence) को समझने तक को तैयार नही होता है।

घमण्ड के दायरे से निज धर्म के दायरे से, जात-कोम के दायरे से. बाहर आकर इस विशाल ब्रह्माण्ड को, और उसके सचालन करनेवाले को, समझने की कोशिश कीजिए, जिस विशाल ब्रह्माण्ड में, आपकी पृथ्वी एक गेंद मात्र है और जिस पर आप एक अणु मात्र है।

मानिए या नहीं मानिए, आश्चर्य की बात तो यही है कि, अणु मात्र होकर भी आप एक क्षुद्र ब्रह्माण्ड Miniature Uuiverse हैं। आपके शरीर में वृहद ब्रह्माण्ड की सभी चीजें, विद्यमान है। जो चीज आपके इस शरीर मे नहीं है, वह चीज बाहर वृहत ब्रह्माण्ड में भी नहीं है। वह सही है। ऐसा उपनिषद के ऋषि भी इन शब्दों में बतलाते हैं।

"यन इहास्ति तद् अन्यत्र, यन नेहास्ति न तद्क्वचित"

यहां तक कि वृहत् ब्रह्माण्ड के देवता भी, आपके इस कण स्वरुप शरीर मे मौजूद हैं। शरीर ही देवता का मंदिर है। यह सही है। ऐसा उपनिषद के ऋषि फिर इन शब्दों में बतलाते हैं।

'देहो, देवालयो देवी, जीवो देवः सदाशिवः"

(कुलार्णव तन्त्र)

ईश्वर को पाने के लिए आसमान की ओर ताकने की आवश्यकता नहीं हैं।

अतः अत्यंत पवित्रता का जीवन यापन करते हुए, अपने मन एवं बुद्धि को क्षुद्र ब्रह्माण्ड की ओर झुकाईये। और तब बृहत् ब्रह्मांड की ओर बढ़ाईये।

क्यों कि :—शरीर के नष्ट होते के साथ मन और भी नष्ट होती है।

फिर तो मौका नहीं है।

मिहिर मसल ... — पुत्र का सवाल
श्रीगति मुक्ति — — माँ की समस्या
रामो ... — — पिता का जवाब

फरवरी १९६१ के एक शाम, गोधूली की वेला में एक विरान मैदान से होकर, जीप से लौटते हुए पांच वर्षीय पुत्र ने अपनी माँ से शाँत वातावरण में, अचानक यह सवाल पूछा।

"माँ, हमलोगों को किसने बनाया है ?"

माँ का सीधा सा सरल सा जबाव था।

पुत्र, हमलोगों को भगवान ने बनाया है।

अन्दाज तो यही हुआ कि पुत्र को माँ के इस जवाब से संतोष नहीं हुआ। इसलिए उसने माँ से तुरत दूसरा सवाल पूछा।

"अच्छा माँ, हमलोगों को भगवान ने बनाया है तो भगवान को किसने बनाया ?"

माँ को कठिन समस्या ! उसने झकबकी में पुत्रको डाँटने जैसे स्वर में कही—"मै ऐसे वैसे सवाल का जवाब नही दे सकती हूँ !"

पिता :—पुत्र को डाँटने की स्थिति को सँभालते हुए तुरत उसकी माँ को समझाया। 'डाँटो मत ! पुत्र का सवाल बहुत उत्तम है'।

अन्धकार बढ़ते ही जा रहा था। सड़क साफ नहीं मालुम होने लगी थी। जीप की बत्ती की रोशनी कर दी गई थी। उसी रोशनी मे सामने कुछ दूर पर एक सियार की आँख लाल चमकने लगी थी।

पुत्र एव पुत्री तारा के मन को बहलाने केलिए माँ ने इशारा करते हुए कहा।

"देखो, देखो, यह सामने सियार है"

देखने की इच्छा से भावुक पुत्र एव पुत्री ने एक साथ ही शोर किया। कहाँ है माँ ? कहाँ है माँ ? माँ वह देखो, उसकी आँखें जल रही हैं।

चमकती आँखों को देखकर पुत्र ने शीघ्र ही माँ से फिर सवाल पूछ दिया। "अच्छा माँ,-सियार की आँखें जलती हैं तो उसकी बैटरी कहाँ है ?"

माँ फिर बिगड़ी। क्रुद्ध स्वर से बोली कि मैं ऐसे-वैसे सवाल का जबाव नहीं दे सकती हूँ।

पिता— माँ की समस्याओं का ख्याल करते हुए थोड़ा

मुस्कुराया और फिर माँ को, पुत्र के डांटने से रोककर समझाया कि—"पुत्र का सवाल बहुत उत्तम है।"

उन दो सवालों का जवाब ढूँढना, पिता के लिए भी एक कठिन समस्या बनी हुई थी।

उपरोक्त सवाल पूछे जाने के दूसरे दिन श्री मुरली मनोहर श्रीवास्तव मवेशी चिकित्सक, जयनगर, जिला हजारीबाग के समक्ष उन दो सवालों को पेश किया गया। उन्होंने जवाब देने के बदले पुत्र को अच्छी तरह पढ़ाने लिखाने की ही सलाह दी।

फिर मिहिर मरसल के नाना श्री सतीश कुमार कोड़ा के पास वे दो सवाल पेश किये गये। वे तो सवाल सुनकर चुप ही रह गए। कुछ और लोगों के सामने जैसे कि ज्ञानियों के सामने उन दो सवालों को रखा गया था। परन्तु जवाब नहीं। वे मात्र इतना सा ही कह गये कि इन सवालों का अन्त नहीं है।

आज १८-६-७५ तक हासिल शास्त्रों के ज्ञान और खुद के चिंतन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर और दिव्य माँ के ही संकेतों के आधार पर पुत्र के सवाल और उसकी माँ की समस्या को गुरु की प्रेरणा पाकर हल करने का मैंने प्रयास किया है।

इन पन्नों में अंकित विचारों की त्रुटियाँ जान सकूँ तो बहुत अच्छा होगा।

एक कुल योगी
रामो

मन्तव्य

मैं यह नहीं कहना चाहता हूँ कि अमुक धर्म पुराना है या अमुक धर्म नया है। मैं यह भी नहीं कहना चाहता हूँ कि अमुक धर्म अच्छा है या अमुक धर्म अच्छा नहीं है।

जिन्दगी का ही नहीं, वरन जीवन का सवाल है। हर किसी को अपनी मानसिक क्षमता के आधार पर, अच्छा बुरा की पहचान खुद ही कर लेना चाहिए। किन्तु, मैं यह अवश्य कहना चाहता हूँ कि कौन से ऐसे माता पिता हैं, जो यह चाहते हैं कि जिन्दगी में उनका पुत्र उनकी सेवा नहीं करे? और फिर मरने के बाद के स्वर्गीय जीवन में पुत्र उनकी पूजा नहीं करे। अगर कोई कहते भी हैं तो शायद यह उनके अन्तःकरण का असली उद्गार नहीं है।

परिवार के कर्त्ता की हैसियत से हर किसी को जीवन की यही बड़ी इच्छा कि मरने तक तो क्या—मरने के बाद भी विधवा पत्नि एवं मासूम पुत्र पुत्रियाँ, मेरी आत्मा की पूजा करे और अपने जीवन भर करती रहे, बराबर ही मन में समायी है और मन में समाती रहेगी।

"रामो"

—

संक्षिप्त चेतावनी

आदि परम्परा को कायम रख के गरीबी अच्छी है।
आदि परम्परा के बाहर रहके अमीरी नहीं अच्छी है ॥१॥
भवनों में स्कूलों की शिक्षा क्षणिक मृत्युञ्जय है।
सृष्टि मे प्रकृति की खुली शिक्षा सदा अमृतञ्जय है ॥२॥
कुछ लोग कहते विद्या है छपी कागज के पन्नों में।
पर मुनि कहते विद्या है छपी प्रकृति के पन्नों में ॥३॥
निपढ़ कह तू दुतकारते प्रकृति के पंडितों को।
प्यारे कह पुकारते हैं प्रकृति के मालिक उनको ॥ ॥
आँख रहते अंधे कह ठगाते रहते हैं उनको।
काली अक्षर भैंस बराबर से चिढ़ाते हैं उनको ॥४॥
किताबी ज्ञान के वे दम्भी; प्रकृति ज्ञान के अंधे हैं।
भोले प्रकृति के ज्ञानी उस किताबी ज्ञान के अंधे हैं ॥६॥
पहचानिये जरा जीवन के आधारभूत मूल्यों को।
निभाये समन्वित जीवन के मूल्यवान उसूलों को ॥७॥
खुद जिएँ वो जीने दे चर अचर जीव जन्तुओं को।
महाशक्ति प्रभावित करती, एक समान जीवों को ॥८॥
अपने को बड़ा समझ तोहिनी करते गरीबों को।
मिथ्या है तेरी समझ, मापदंड कहे जो दौलत को ॥९॥
करोड़ सिक्कों के करोड़ पाप मुनिगण बताते हैं।
पाते करोड़ मृत्यु लोक में जो. पापी हो नर्क जाते हैं ॥१०॥
सुन्दर महल छूट गया, छूटा सुन्दर सा काया।
अफसोस करोड़ों वालो, करोड़ कभी नहीं काम आया ॥११

आदि परम्परा को कायम रखके गरीबी अच्छी है।
आदि परम्परा के बाहर रहके अमीरी नहीं अच्छी है ॥

झांकियां (Flash)

भगवत् भक्ति एक नशा है। व्यक्ति पर यह नशा समान रुप से सवार नहीं होती है। किसी को सीधे ईश्वरीय शक्ति के प्रभाव से यह नशा सवार हो जाती है और किसी पर सत्संग करते हुए बहुत प्रयास याने साधना के बाद यह नशा सवार होती है। साधक को जिस किसी नशीले द्रव्य के द्वारा अपने मन में भगवत् भक्ति का नशा सवार हो, उसका सेवन में विरोध नहीं है।

धूम्रपान—गांजा।

मद्पान—सोमरस, बड़नी (Ricebear) पैंठी इ०।

भक्तिभाव — रोशनी है।
मन — बत्ती है।
दीपक — शरीर है।



मन रुपी बत्ती को भक्तिरुपी रोशनी से प्रज्वलित करने के लिए दीपक में जो भी उपयोगी तेल (आचार) भरे धर्म विरोध नहीं है। दीपक को सुरक्षित रखे बिना बत्ती को आधार नहीं है। दीपक रुपी अपने शरीर को कायम रखने के लिए याने शरीर को जर्जर होने से बचाने के लिए जो आवश्यक हो, उसका अर्पण के बाद उपयोग धर्म विरोध नहीं है।

नोट :— (आचार आठ हैं– कुलाचार; ब्रह्माचार; वैष्णवाचार, भैवाचार; वेदाचार इत्यादि। पर सबसे उत्तम कुलाचार ही है।) (आहार=शाकाहारी या मांसाहारी)

धर्म

यह संसार निराला है, यह दुनिया विचित्र है ।
यहाँ धर्मों का मेला है, आदमियों का झमेला है ॥
और इस मेला में छोटे बड़े धार्मिक गुरुओं का
बाजार गर्म है । चलचित्र के ये गाने—
"ये दुनियां के मेले हर रोज लगेंगे
मगर अफसोस हम आप न होंगे"
कितना उपयुक्त है ।

इसी क्षणिक जिंदगी की पृष्ठभूमि में चलिए आज हम उन शब्दों की परिभाषा जानने की कोशिश करें, जिनको जाने बिना, सृष्टि को समझना और धर्म को समझना कठिन होता है ।

पौराणिक ऋषि मुनियों ने कुछ ऐसे शब्दों का अविष्कार किया जो सचमुच ही लाजवाब हैं ।

संसार - सम = बराबर सार = निचोड़ । वह जिसका निचोड़, जिसका अंतिम नतिजा बराबर हो । एक सामान हो । अगर हम ने शुन्य से आरभ किया तो उसका अंत भी शुन्य ही हो ।

कितना बड़ा आध्यात्म है, इस शब्द के पीछे कि हमने जब शुन्य से आरभ किया तो उसका अंत भी शुन्य ही हो । इसी को संसार (सम + सार) कहते हैं । वैसे संसार मे रहते हुए यहीं पर हम क्या हैं ? हम क्या नहीं हैं ? की बात, एक सुत्र में समझ मे आ जाती है ।

तो वैसी हालत में जाति कौम और नामकृत धर्मों का आडम्बर ही किस काम का ?

दुनियाँ :- यहाँ सिर्फ दो ही हैं । शुन्य से ही आरभ होनेवाली शुन्य ही अंत होने वाली, वैसी इस संसार में सिर्फ दो ही हैं । एक परमात्मा और दूसरा आत्मा है । कालान्तर मे आत्मा, परमात्मा में ही शामिल होता है, और परमात्मा से ही आत्मा का भी सृजन होता है । तो उन दो तरह की स्थितियों मे धर्म का माने क्या है ? धर्म की परिभाषा क्या है ? दो ही होने के कारण, आत्मा-परमात्मा के ही अंश हैं । परमात्मा से ही वे सृजित हैं । ऐसी हालत मे मेरे ख्याल से एक आत्मा को अन्य आत्माओं का आदर करना धर्म है । और एक आत्मा के द्वारा आत्माओं की पूजा करते हुए परमात्मा की पूजा करना ही धर्म है । अपने आत्मा के जैसा ही सभी मे आत्मा को देख पाना धर्म है ।

धर्म शब्द का सृजन संस्कृत के 'धृ" धातु से हुआ है जिसका माने होता है—धारण करना । धारयामि याने धारण करता हूँ । क्या धारण करता हूँ ? यहाँ संसार में, यहाँ दुनियाँ में धारण करने लायक चीज क्या है ? और फिर किससे किसका धारण होता है ? सोचने समझने से संक्षिप्त में इन सवालों का जवाब यही होता है, कि जीव याने चित्त (Spirit) का प्राकृतिक शरीर के द्वारा धारण होता है । शरीर जीव को धारण करता है । और जीव शरीर में प्रवेश पाकर शरीर का विकास करता

है, निर्माण करता है। जीव सत्य (real) है, शाश्वत (eternal) है और अदृश्य सूक्ष्म (subtle) है।

शरीर असत्य है, अस्थायी है और स्थूल gross) है। तो असत्य एवं अस्थायी और स्थूल के द्वारा सत्य, शाश्वत एवं सूक्ष्म का ही धारण होता है। तो निष्कर्ष यही होता है कि स्थूल के द्वारा सूक्ष्म का सही धारण करना ही धर्म है।

पंचतत्वों का यह शरीर पूर्ण है। सभी अवयवों के साथ पूर्ण है। लेकिन यह पूर्ण शरीर तभी चलायमान है, जब तक इसमें छटा तत्व जीव विद्यमान है जिस वक्त जीव केवल एक तत्व जीव, हट जाता है उसी वक्त बाकी पंच तत्वों का विकीरण (disintegration) होने लगता है। उसका लय (dissclution) हो जाता है।

अतः शरीर के द्वारा जीव का धारण होता है। और जीव तभी तक शरीर का साथ देता है जब तक शरीर के द्वारा जीव का सही धारण होता है। सही धारण करना ही धर्म है। किस लिए धारण करता हूँ ?

धारण करने की अपनी जवाब देही को उचित रीति से निभाने के लिए ही धारण करता हूँ। अतः जीव धारने की जवाबदेही को सही निभाना ही धर्म है। इस बात को आदमी रुप शरीर ही समझ सकते हैं। पशु, पक्षी, पेड़ पौधे शरीर रुप नही समझ सकते हैं। और जो आदमी रुप शरीर पाकर इस बात को नहीं समझसकते

हैं वह पशु ही है। पशु केवल मे ही है। केवल शरीर का रुप मात्र ही, आदमी का है।

आदमी रुप शरीर केवल एक मात्र कारण से इस बात को समझ सकते है और वह है— विवेक। यह विवेक पशु पक्षी रुप शरीरों में गौण होता है। विकसित नही होता है। अगर आदमी में भी विवेक विकसित नही है तो वह पशु पक्षी समान ही है। वह मात्र खाता है, पीता है, सोता है, व्यभिचार करता है जिसे पशु-पक्षी भी करते है। अतः वह मात्र आदमी है। किन्तु, जिस आदमी में विवेक ज्ञान जागृत है, वह आदमी नहीं है। आदमी से उच्च स्तर में वह मनुष्य है। विवेक किसी में जा जागृत होता है। किसी में नही जागृत होता है। यह केवल आदमी के इन्द्रियों के द्वारा शुभ-अशुभ कर्मों के कारण ही है। और जिस शुभ-अशुभ कर्मो पर सृष्टि कर्ता ceator) ईश्वर की कृपा grace निर्भर करती है। जो इस बात को अनुभव करते है। कि वे धारण करते हैं। वही विवेकी है। वही मनुष्य है। मनुष्य का अर्थ जान ले तो बात स्पष्ट हो जएगी। एक शब्द मनुष्य दो शब्दों के सन्धि से बना है।

मनुष्य मन (mind + हृदय याने चैतन्य (concious है। वह जिसका मन चैतन्य है, वही मनुष्य है। मन किस बात का चैतन्य है ? केवल इसी बात का चैतन्य है कि वह धारण करता है। जीव का शरीर धारण करता है। शरीर में स्थित मन के द्वारा ऐसी चैतन्यता, विकसित विवेक के

कारण ही होता है। आदमी अपने विवेक को जीव के सही धारण क द्वारा, सत्संग के द्वारा विकसित करता है ! विकसित विवेक द्वारा मनुष्य हो जाता है। और मनुष्य हो कर उनका आत्मा देवता हो जाता है। परम देव हो जाता है। और जो चैतन्य नहीं है; वह मात्र आदमी है। पहले यह कहा जा चुका है कि शरीर एक क्षुद्रब्रह्मांड है। क्षुद्र ब्रह्माण्ड को विकसित विवेक द्वारा जो समझ लेता है, उसीका ही मन चैतन्य है। तो चैतन्यके सामने क्याक्या है ? चैतन्य के सामने बृहद् ब्रह्माण्ड है। बृहद् ब्रह्माण्ड का ही घनीभत (condensed) रूप चलायमान (moving) शरीर है। जिसे क्षुद्र ब्रह्माण्ड कहते हैं। क्यों कि जो कुछ इस शरीर मे है; वही सभी कुछ बाहर मे भी है। और जो कुछ इस शरीर मे नहीं है वह बाहर मे भी नही है। तो बृहद् ब्रह्माण्डके बाद ही क्षुद्र ब्रह्माण्ड है। बृहद् ब्रह्मांडके द्वारा ही क्षुद्र ब्रह्माण्डका सृजन हुआ है और बृहद् ब्रह्माण्ड की कृपा से ही क्षुद्र ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ है। इसके आगे और फिर एक नर क्षुद्र ब्रह्माण्ड के साथ दूसरे नारीक्षुद्र ब्रह्माण्ड मिलकर बृहद् ब्रह्माण्डकी कृपासे ही पुत्र क्षुद्र ब्रह्माण्डों का निर्माण होता है। होते रहता है। होता आया है। यही सृजन (creation) की क्रिया है। पुनः सृजन (reproduction) का सिलसिला है।

इस तरह हम देखते है कि संसार मे, दुनिया मे दो ही है। एक बृहद् ब्रह्माण्ड है और उनकी ही कृपा से उनकी ही भक्ति से निर्मित, दूसरा क्षुद्र ब्रह्माण्ड है।

बृहद् ब्रह्माण्ड में परमात्मा है। और क्षुद्र ब्रह्माण्ड में उन्हीं का अंश आत्मा है। एक शरीर रहित है। असीमित है। उन्हीं का अंश दूसरा शरीर में सीमित है। इसी दुनिया (दो ही) का ससार (सम+सार) म मनुष्य (चैतन्य चित्त वाला) विशुद्धता में धारण करता है।

एसी ही धारण करने की क्रिया को धर्म कहते हैं। ब्रह्माण्ड को धारण करते हैं। जो इस तथ्य को हृदय मे अनुभव कर सकता है; वही धर्म को समझ सकता है। और वही धार्मिक आचरण भी कर सकता है। अन्यथा मुँह में धर्म शब्द का नाम रटना मात्र है।

किसी ने सुना दिया कि मान लिया। अपने से अनुभव किए बिना मान लिया तो एसे में धर्म केवल अंधा धुंध मानता [blindfath] मात्र हो जाता है।

आपको महसूस होता हो या नहीं होता हो पर यह बात बिलकुल सही है ! कि आपके हृदय में रोज धर्म की लड़ाई होती रहती है। इस काम को करें या नहीं करें। करने से अच्छा होगा या अच्छा नहीं होगा। पड़ोसी के घर का सामान चोरी करें या नही करें। इसी तरह की लड़ाई आपके हृदय में आपके मन में होती रहती है।

इस लड़ाई में अच्छाई की जब जीत होती है; वही धर्म की जीत है। वही धर्म है। वैसा विजयी मनुष्य ही असली में धार्मिक है।

इन तत्वो के सदर्भ में जब आपने बीज रुप धर्म की परिभाषा को समझ सका तो धर्म शब्द के असली विकारहीन; चमक से निश्चय ही आप पूर्णतय प्रकाशमान हो जाएंगे, और तब वैसे प्रकाशमान विवेक से, धर्म शब्द के आगे जुटने वाले पर्यायवाली शब्द आपको अवश्य फीका और छिलका मात्र मालुम पड़ेंगे। धर्म रुपी या धर्म सूरज को मनुष्यों के दिलों में विकार रहित चमकने दीजिए। धर्म पवित्र धर्म शब्द के आगे कोई शब्द के जुटने से ही विकार होता है।

संक्षिप्त में मेरे छोटे से दिमाग में चिंतन से एवं ध्यान के द्वारा जो कुछ भी आया, उसे ज्यों का त्यों आपके सामने रख दिया। उसे आप अपने बड़े दिमाग की बड़ी कसौटी में परख कर संसार के जिज्ञासूओं को सुनावें। आपके हृदय में धर्म की लड़ाई,

अच्छे या बुरे की लड़ाई, खुद आप ही को करनी है। इसमें किसी अन्य के मदद की आवश्यकता नहीं है और न नामकृत धार्मिक नियमों की ही जरुरत है।

अच्छा निर्णय के आधार पर आप चैतन्य को प्राप्त कर सकते हैं। और चैतन्य को प्राप्त करने पर ही, क्षुद्र ब्रह्माण्डों सहित बृहद् ब्रह्माण्ड को समझ सकते हैं। जान सकते हैं। और समझ कर उसका याने बीज का सही धारणा भी कर सकते हैं। अब यह बात साफ हो जानी चाहिए कि बृहत ब्रह्माण्ड ने क्षुद्र ब्रह्माण्ड को जन्म दिया। इस तरह बृहत् ब्रह्माण्ड पिता और क्षुद्र ब्रह्माण्ड पुत्र हुए। फिर सृजित क्षुद्र ब्रह्माण्ड के द्वारा बृहत् ब्रह्माण्ड की ही कृपा से; एक और क्षुद्र ब्रह्माण्ड का जन्म हुआ और अब यह दूसरा क्षुद्र ब्रह्माण्ड, उस बृहत् ब्रह्माण का पौत्र हुआ। और यह कुल का सिलसिला बृहत ब्रह्माण्ड के कुल का सिलसिला चलता ही रहा है और और अभी तक भी चलता ही रहा है और अनगिनत भविष्य तक चलता ही रहेगा।

यह ब्रह्माण्डों का सिलसिला (uuiversal order) सनातन है। और सृजित (created) के द्वारा सृजन (creation का नियम, बृहत् ब्रह्माण्ड की कृपा से सनातन है। यह पहले कहा जा चुका है कि बृहद् ब्रह्माण्ड में परमात्मा है और क्षुद्र ब्रह्माण्ड में आत्मा है। तब इस तरह भी समझा जा सकता है; और ऐसा समझना आसान भी है।

परमात्मा ने आत्मा को बनाया। इस कारण परमात्मा, पिता और आत्मा पुत्र हुए। परमात्मा की कृपा से एक सृजित नर आत्माने दूसरे सृजित नारी आत्मा के साथ मिलकर फिर अन्य आत्माओं सृजन किया। ये आत्माए परमात्मा के पौत्र हुए। यह सिलसिला चलता आया है और अनगिनत भविष्य तक चलता ही रहेगा। और इसका नियम सनातन है।

बृहद् ब्रह्माण्ड में परमात्मा परम पिता परमेश्वर सबसे आगे है। उनसे उत्पन्न क्षुद्र ब्रह्माण्ड में आत्मा, दूर के दादा परदादाओं की आत्मा है और फिर उनसे पुनः उत्पन्न क्षुद्र ब्रह्माण्डों में निकटतम भूतकाल (Neerest past) में आपके पिता का आत्मा है और फिर आपके पिता के पिता का आत्मा है और फिर आपके पिता के द्वारा पुनः उत्पन्न (Reproduced) क्षुद्र ब्रह्माण्ड में; आत्मा में आपके पुत्र आदि हैं।

सभी बृहद् ब्रह्माण्ड परमात्मा की कृपा से क्षुद्र ब्रह्माण्डों आत्माओं का सिलसिला क्षुद्र ब्रह्माण्ड या आत्मा के द्वारा ही होता है और चालू है।

अतः परमात्मा के द्वारा आत्मा का सृजन और आत्मा के द्वारा आत्मा का सृजन; परमात्मा की कृपा से चला आ रहा है। यह सिलसिला सनातन है। इस प्रकार आप पायेंगे कि क्षुद्र ब्रह्माण्डों और उसमें निहित आत्माओं के बृहद् ब्रह्माण्ड तक परमात्मा तक के कुल वंश (Geneology) हैं और कुल के नवीनतम आप एक सदस्य हैं। इस कुल के

आधारी सदस्य हैं। इस कुल के प्रति आपका दायित्व है। उस कुल के आप ऋणी हैं, उसे आप धारण करते हैं; यह सनातन है। सनातन धर्म है।

इस प्रकार इसी तरह के सिलसिलेवार कुल का आप कुलाचारी ही बन सकते हैं। कुल धर्मी ही बन सकते हैं। अन्य प्रकार नहीं बन सकते हैं।

अगर कोई आपको अन्य प्रकार बनने की हिदायत करता है तो वह निश्चय ही चैतन्यहीन व्यक्ति है और आपको भी चैतन्यहीन बनाता है। यहाँ अब सोचने की बात है कि कुल के दायित्व को निभाने के लिए कोल आदिवासियों का कुलाचार; पितरों की पूजा (Aneestral Worship) पौराणिक युगों से चला आ रहा यह प्रथा कितनी तक संगत है और कितना उचित है।

ऐसी तो बात नहीं है या ऐसा कभी हो ही नहीं सकता है कि संसार में; दुनियां में नामकृत धर्मों के पनपने के पहले सृष्टि से सम्बन्धित कोई धर्म ही नहीं था। नामकृत धर्मों के पनपने की तो तारीख है।

सृष्टि के आरम्भ होने के दिन से ही बृहद् ब्रह्माण्ड में परमात्मा का कुल का सिलसिला चला है और उस कुल का सम्बन्ध; अटूट बन्धन जिस नियम के द्वारा कायम रहा है वही सनातन नियम है। उस कुल नियमों के अन्तर्गत कुल के सदस्य के रूप में आपका आचार ही कुलाचार है। कुलाचार के द्वारा कुल नियमों के सहारे बृहद् ब्रह्माण्ड के परमात्मा का धारण और उनके द्वारा उनके कृपा से ही सृजित

एक ब्रह्म यहाँ के आत्माओं का धारण ही कुल धर्म है। यही धर्म सनातन है क्योंकि यह धर्म शाश्वत ब्रह्माण्डीय नियमों (Eternal Universal Order) से सम्बन्धित है।

कोल आदिवासियों-इस सनातन धर्म के सिद्धान्त से अलग सिद्धान्त बनाकर अगर कोई धर्म बनाता है और उस धर्म शब्द के आगे कोई एक नाम जोड़कर उसे भिन्न (Distinet) बनाने की कोशिश करता है तो वह निश्चय ही परमात्मा के शाश्वत नियमों से धोखा करता है और इस तरह अपने को आपको और मानव समाज को गुमराह करता है।

— —

संसार के धर्म

संसार के नामकृत धर्मों की छत्रछाया में जानवर और आदमी एक साथ रहते हुए नहीं देखे जाते हैं संभव भी नहीं होगा। शायद इसी कारण आदमी अपने पालतू जानवरों तक का मकान अलग ही बना देते हैं।

आदमी के साथ देवताओं का एक साथ रहना तो संभव होना चाहिए। यह भी संभव होते नहीं देखा जाता है। यहां तक कि अपने पित्तरों के साथ भी कुछ तरह के लोगों को एक साथ रहते नहीं देखा जाता है।

लिहाजा आदमी ईश्वर के साथ देवताओं के लिए भी एक अलग ही मकान बना डालते हैं और उसी मकान में

ईश्वर को देवताओं को अवतारियों को एक आवाज देकर बुलाते हैं। घटी बजाकर सचेत करते हैं और तब प्रार्थना करते हैं, पूजा करते हैं इतना ही नहीं ईश्वर को देवताओं को और पैगम्बरों को भोग के रुप में भोजन पानी भी वही पहुँचा देते हैं और तब अपने यहां से भोग के अर्पण से बचा भोजन या खाने की सामग्रियां ले आकर घर में घुस कर खाते हैं। देवताओं को ईश्वर को अवतारियों को घर से बाहर अलग खिलाते हैं और अपने घर के अन्दर रसोई कोठरी के अन्दर अलग खाते हैं। फिर उसी तरह पित्तरों को; अपने निज पित्तरों को भी अपने घर से बहुत दूर; बहुत दूर गया धाम में पितृ पिंड पहुँचा देते हैं। पंडा के द्वारा अर्पण कराते हैं। अपने ही घर में आह्वान करने में तो क्या जाने घर ही छूत हो जाएगा और उन्हें खुद ही अर्पण करें तो शायद क्या जाने खुद ही छूत हो जाएँ। कैसे लोग हैं? कैसा समाज है? कैसा धर्म है? देवता तुल्य बनकर देवताओं के साथ जब नहीं रह सकते हैं तो देवताओं को; ईश्वर को; अवतारियों को दूर से पुकारने से क्या फायदा है? अपने रहने के घर में ही जब उन्हें निमन्त्रण नहीं दे सकते हैं तो दूसरे स्थान के दूसरे घर (मंदिर) में निमन्त्रण देने से क्या फायदा है?

लोग Beni Beni Spritus कहकर पुकारते हैं और कोई दूसरे शब्दों के आवाज देकर पुकारते हैं। कैसे ईश्वर को; देवताओं को पैगम्बर अवतारी को आने और जाने के

लिए कहा जा सकता है ? अपने आदमी होकर कैसे उन्हें आने और जाने के लिए कह सकते हैं ?

क्या ही अच्छा होता कि गृहिणी पवित्र रसोई कोठरी में ही ईश्वर को; देवताओं को; अवतारियों को; पित्तरों को खुद देवी तुल्य बनकर आह्वान करती और प्रथम चरण में ही उनको श्रद्धा-भक्ति के साथ भोजन पानी रसोई कोठरी के अन्दर ही अर्पित करती और दूसरी चरण में आदमियों को रसोई कोठरी के बाहर खिलाती ।

वैसे में निजका रसोई कोठरी या रसोई घर ही देवालय हो जाता और रसोई के दिन प्रतिदिन के अर्पण से बचा भोजन ही प्रसाद हो जाता और गृहिणी सहित पति योगी होकर या केवल गृहिणी जोगिन होकर देवी एवं देव तुल्य हो जाती। क्या ऐसा हो सकना सम्भव नहीं है ? इसके विपरीत सिद्ध पुरुषों के मकान नहीं होते हैं। मात्र एक कुटिया होती है जिसके अन्दर अपने साथ सभी कुछ है। साँप बिच्छु जैसे जहरीले जन्तु भी निबोध रुप से कुटिया के अन्दर टहलते हैं। कुछ सिद्ध पुरुषों की तो कुटिया भी नहीं होती है। अपने शरीर रुपी मन्दिर मस्जिद गिरजाघर के अन्दर ही अपने भी है, देवता भी हैं। उसके अन्दर सारे जीवों का जन्तुओं का नगर ही बसा है। आखिर उनका शरीर एक क्षुद्र ब्रह्माण्ड जो है वे न आवाज करते हैं और न घंटी ही बजाते हैं और सत का न वर्दी ही पहनते हैं।

इसी तरह का जीवन संभव कर सकने योग्य सृष्टि

के नियम ही सनातन नियम है और सनातन नियमों का हृदय में अनुभव कर पालन करना ईश्वर के सनातन धर्म का पालन करना है, क्षुद्र ब्रह्माण्ड का धारण करना है और उसी परिप्रेक्ष में बृहत् ब्रह्माण्ड का अनुभव करना है। आत्मा को अनुभव करना है, आत्मा के द्वारा आत्माओं को और परमात्मा को सम्बद्ध करना है। इस तरह करके कुल योगी बनना है। यही और इसी तरह कुल धर्म का पालन करना है क्योंकि अन्ततः अपनी आत्मा, माता पिताओं की आत्मा दादा-परदादा दादी-परदादी और अन्य पूर्वजों की आत्मा मामा-मामी के कुल के पूर्वजों की आत्माएँ और अन्य सभी आत्माएं एवं अवतारियों की आत्माएं सभी परमात्मा के ही कुल के है। सभी ईश्वर के अंश ईश्वर के ही पुत्र पौत्र हैं। सभी परमात्मा के अंश आत्मा है।

अपने जीवन का सवाल है। अतः आप खुद चिंतन कर निष्कर्ष निकालिए और सही धर्म का पालन कीजिए।

धार्मिक ग्रंथ

जिसने अनुभव किया और जिसमें अनुभव का संचार प्रचुर हुआ, उन्हीं का वही अतिरिक्त भरपूर अनुभव उनके हृदय के अन्दर से एक नदी की बाढ़ के पानी की तरह उसके मुखके होठों के किनारे से प्रवाहित हुआ। जिसने उनसे सुना उसी ने उस ज्ञानी का नमन किया। उन्हीं के ज्ञान भण्डार से निकला उपदेश सर्व साधारण के मन को हर्षित किया

और ज्ञान की वही सुभाषित वाणी ज्ञान के वही अनूठे उपदेशों का कुछ अनुयायियों ने संकलन किया याउन्होंनेही खुद संकलन किया हो। उपदेशों का संकलन मोटा ग्रन्थ बना पर सकलित उपदेशों का आधार, संकलित ज्ञान का आधार ज्ञानी पुरुष को निजी अनुभव के सिवाय कुछ नहीं था। ज्ञान उनका प्रथम ज्ञान था।

जिन्होंने भी अनुभव किया हो जहां भी अनुभव किया हो उनके अनुभव का श्रोत एक ही है, उनके ज्ञान का श्रोत एक ही है। किन्हीं ज्ञानी पुरुष को कृपा फलक (grace) सीधे ईश्वर से मिली थी और किन्हीं ज्ञानी पुरुष को साधना के द्वारा या तपस्या के बल पर कृपा या फलक (grace) ईश्वर से मिली थी। फर्क इतना ही है कि भिन्न भिन्न समयों में, भिन्न-भिन्न स्थानीय वातावरणों में ज्ञानी पुरुष अवतरित हुए थे, पैदा हुए थे और उन्हें ज्ञान मिले थे।

इस भिन्नता के बावजूद ज्ञान का श्रोत एक ही है और एक ही होने के कारण ज्ञान की वाणी में, ज्ञान के उपदेशों में ईश्वर को ही अनुभव कर सकने सम्बन्धी नियमों मे तरीकों में भिन्नता नहीं आनी चाहिये थी। तो आखिर इतनी भिन्नताएँ क्यों है ?

ईश्वर के पैगम्बर, ईश्वर के पुत्र और अवतारी पुरुषों के ज्ञान की वाणी, ज्ञान के उपदेश जो संकलित है, उनमें मेल नहीं है। एक संकलित ग्रन्थ दूसरे संकलित ग्रन्थ से भिन्न है। संकलित ग्रन्थ नाम भले ही भिन्न हो, उस ग्रन्थ

के अन्दर की बातें तो भिन्न नहीं होनी चाहिये, चाहे जिस भाषा में, जिन अक्षरों में क्यों न लिखी गई हो।

ईश्वर के पुत्र, ईश्वर के पैगम्बर, अवतारी पुरुष एक ही पृथ्वी पर एक स्थान में, एक समय में, एक तरह के समाज के लोगों के लिए, एक तरह का ज्ञान; एक तरह का उपदेश देंगे और दूसरी जगह, दूसरे समय में, दूसरे तरह के समाज के लोगों के लिए दूसरी तरह का उपदेश देंगे, ऐसा सम्भव नहीं जान पड़ता है।

कैसे सम्भव होगा ? दुनियां के किसी कोने में कोई भी व्यक्ति कोई भी समाज के लोग, यह दावा नहीं करते हैं, अब तक तो मुझसे सुना नहीं गयाहै कि ईश्वर दो-तीन तरह के हैं। मूर्ख से भी मूर्ख और विद्वान से भी विद्वान सभी कहते हैं कि मालिक ऊपर में हैं और सबके मालिक एक है। चाहे उसे ईश्वर कहें, अल्हा कहें या God कहें या जो भी कहें। अलग-अलग शब्दों के उच्चारण से उनमें कोई फर्क नहीं होता है. अगर होता हो उसका प्रमाण मुझे मालूम नहीं है।

मेरे ख्याल से उन्हें महा शक्तिमान (Supreme Power) कहा जाए तो बहुत उत्तम है। क्योंकि किसी भी धर्म में रहकर सभी का जन्मना, जीना और मरना उन्हीं की कृपापर निर्भर करता है। दो ईश्वर रहते तो दो ईश्वरों के दो अलग-अलग पैगम्बर दो ईश्वरों के दो अलग-अलग पुत्र, अलग-अलग प्रकार के ज्ञान की बातें कहते अलग-

अलग प्रकार के उपदेश देते, यह समझ सकने की बात थी।

किन्तु सभी जब एक ही ईश्वर (महा शक्तिमान) के बारे में बतलाते हैं तो एक ईश्वर के कितने ही पैगम्बर क्यों न हों एक ईश्वर के कितने ही पुत्र क्यों न हों, ईश्वर के बारे में ईश्वर से सम्बन्धित ज्ञान के बारे में ईश्वर को ही अनुभव कर सकने सम्बन्ध नियमों, तरीकों के बारे में अलग अलग बातें नहीं बतला सकते हैं। ईश्वर के अथाह भण्डार से प्राप्त ज्ञान और उपदेश भी अलग-अलग नहीं हो सकते हैं। कोई सम्भव नहीं मालूम पड़ता है।

धर्मों में इतनी भिन्नता होने के कारण से ऐसा लगता है कि ईश्वर के पैगम्बर, ईश्वर के पुत्र ईश्वर के अवतारी पुरुष के श्री मुख से निकली बातें उनके जीवित अवस्था में ही लिखी नहीं गई। एक उपदेश के बाद दूसरे उपदेश ज्यों का त्यों उतारी नहीं गई। संकलित नहीं की गई। उनके जीवित अवस्था में ही लिखी गई होती और उन्हें फिर सुनाया भी गया होता तो शायद ज्ञान के बातों की भिन्नताएँ, उपदेशों की भिन्नताएँ उसी समय दूर हो जाती। मालूम होता है कि शायद वैसा नहीं हुआ। आखिर सब में भिन्नताएँ आ ही गई।

इससे निष्कर्ष निकलता है, कि निश्चय ही पैगम्बर ईश्वर-पुत्र, और अवतारी पुरुष के इस धरती पर से विदा होने के बाद उनके निकटवर्ती चेलों ने, उनके ज्ञान की बातों को, उपदेशों को याद्‌याद करके लिखा है। याद

करके संकलित किया है। और इस प्रकार संकलित ग्रन्थों में स्वार्थ की भावना; पक्षपात की भावना आ ही गई।

ईश्वर के पैगम्बर ईश्वर के पुत्र; और अवतारी पुरुष कभी भी पक्षपात की बातें नहीं बतला सकते हैं। वह वे जहाँ कहीं भी जब भी कोई बात बतला सकते हैं। तो सारे सृष्टि के सारी दुनियां के मानव मात्र के लिए जीव मात्र के लिए; एक तरह के, एक ही समान कल्याणकारी बातें ही बतला सकते हैं।

इसके उपरान्त भी जब मिलताएं देखने को मिलती है। तो ये मिलताएँ कुछ स्वार्थी आदमियों के बुद्धि की ही उपज है। क्योंकि कुछ स्वार्थी धर्म ग्रन्थों के तो अध्यतन (up to date) संस्करण, नये संशोधनों के साथ नया संस्कारण तैयार किए जाने की सूचनाए आकाश वाणी के द्वारा आजकल भी सुनने को मिलती है। जैसे भी जिस तरह से भी उन ज्ञान की बातों को उन उपदेशों को संकलित किया गया हो; ये धार्मिक ग्रन्थ है इस कारण वे सृष्टि मात्र के लिए हैं। मानव मात्र के लिए है। जीव मात्र के लिए है, एक समान सबके लिए मार्ग दर्शक है।

इस कारण सभी ग्रन्थ सभी के लिए खुला; रहना चाहिए था। जो तर्क संगत ज्ञान नहीं होता; उसे भक्त निबोध रूप से अस्वीकार करते। जो शीघ्र फलदायक

होता उन्हीं को, स्वीकार करते और क्षमता के आधार पर उत्तम से उत्तम तरीकों को परीक्षा करके फलदायक होने पर अपना लेते।

परंतु अफसोस की बात तो यही है कि, उस धार्मिक ज्ञान का उस धार्मिक ग्रन्थ का भी नामकरण हो गया। फलां धर्म का फलां धार्मिक ग्रन्थ है।

वाह रे आदमी की बुद्धि कणमात्र माटी के पुतले की बुद्धि!

अब वह धार्मिक ग्रन्थ व्यक्तिगत हो गई और उसे व्यक्तिगत बनाकर उसी पैगम्बर के नाम पर उसी ईश्वरी पुत्र के नामपर संस्थाए बनी, प्रचारक मंडल बना। भिन्नभिन्न स्तरों के पद बनाए गए। और उन संस्थाओं को धार्मिक हुकुमते चली। संस्था के व्यक्तिगत धर्म के नाम पर मन गढ़न्त नियमों का मकड़ा जाल ही तैयार हो गया।

नतीजा यह हुआ कि किसी कारण वश, नामकृत धर्म के पकड़ा जाल में जो भी फंसा वह बेचारा टस से मस नहीं कर सका।

अब वह उसी धपे का आदमी बन गया। उस धर्म से संबंधित उसी ग्रन्थ का आदमी बन गया। अब उस ग्रन्थ को छोड़कर दूसरे ग्रन्थ का अध्ययन नहीं कर सकते। दूसरे ग्रन्थ के उपयोगी बातों को तर्क संगत बातों को स्वीकार नहीं कर सकते हैं। वह अब सीधे ईश्वर का आदमी

नही रहा। सीधे इस बृहत् ब्रह्माण्ड के कुल का आदमी नहीं रहा। अपनी आत्मा के द्वारा सीधे परमात्मा का आदमी नहीं रहा। जो कुछ भी वह रहा, द्वारा नामकृत धर्म के, द्वारा उन मनगढ़न्त नियमों के, वह ईश्वर से दूर रहा।

उसके और ईश्वर के बीच में नामकृत धर्म एक फाटक Gate way) बन गया और उस फाटक के चौकीदार विचित्र स्तरों के धार्मिक पदों के सुशोभित करने वाले धार्मिक ठीकेदार बन गए। अब उनके स्वीकृति के बिना। और बिना उनका सहारा लिए स्वर्ग नही जा सकते हैं। ईश्वर से सम्बन्ध व्यक्तिगत रुप से स्थापित नहीं सकते हैं।

उसी तरह गिरोह बनते गया; उस पैगम्बर के नाम से उसे ईश्वर के पुत्र के नाम से अवतारी के नाम से गिरोह बनते गया। और अब वे दावी करते है कि हमलोग फलना पैगम्बर के हैं। हमलोग फलना ईश्वर के पुत्र के हैं। और फलना अवतारी के हैं।

अब वे आदमी; धर्म के नाम पर, गिरोह के नाम पर जब ईश्वर के स्तर पर से नीचे पैगम्बर के स्तर में ईश्वर पुत्र के स्तर में अवतारी के स्तर में उतर गए, तो वे विशेष किसी एक पैगम्बर के, किसी ईश्वर के पुत्र के; किसी एक अवतारी के अवश्य है पर वे; अब ईश्वर के नहीं है। और वे अब ईश्वर के नही रहे। ईश्वर अब उनसे दूर हैं।

इसी कारण से भिन्न धर्म (distined religion) के दो तरह के अनुभावियों के आपसी समझ में भिन्नताए आई। भिन्न समुदाय बनें।

नतीजा यह हुआ कि आज दो भिन्न धर्म के धर्मावलम्बीयों के बीच लड़ाई की भावना घर कर गई हैं। लड़ाई की भावना, अनुयायियों में बहुत तीखी रुप से बनी हुई है। और उस तरह का गन्दा वातावरण, आदमी-२ में, गांव-गांव में; शहर-शहर में, देश-देश में बनाए रखने में भिन्न धर्म रूपी स्वर्ग के फाटक के, मुट्ठी भर चौकिदारों का ही हाथ है।

दुनियां के राजाओं को, दुनियाँ के नेताओंको भिन्न धर्म के नाम पर धार्मिक चंगुल से, धार्मिक गुलामी से भक्तों को मुक्त करना चाहिए। धर्म के नाम पर व्याप्त अन्दरुनी दवाओं को समाप्त कर भक्तों को मुक्त करना चाहिए। अगर मानव मात्र, ईश्वर के ही स्तर में बने रहते तो शायद धार्मिक ग्रन्थ का नाम करण नहीं होता। धर्म को भिन्न धर्म (distinct religiou बनाने की चेष्टा नहीं होती। भिन्न धर्म को मनगढ़न्त नियमों के साथ में ढाकने की आवश्तकता नहीं पड़ती। अनुयायियों को, भक्तों को भिन्न धर्म का तगमा पहनाने की आवश्यकता नहीं पड़वी। और तगमों के द्वारा कौन नही बनते। जाति नहीं बनती। वरन उसके स्थान पर धर्म भी ईश्वर का धर्म कहलाता। धार्मिक ग्रन्थ भी ईश्वर का धार्मिक ग्रन्थ ही कहलाता और तब सभी आदमी के ही कुल के आदमी

कहलाते। और तब भिन्नता की गुंजाईश ही नहीं होती। फिर लड़ाई की मनयुटाव की गुंजाईश ही नही होती। वर्त्तमान समय मे, मित्रयायों के इस टकराना की स्थिति के लिए, निश्चिय ही ईश्वर के पैगम्बर, ईश्वर के पुत्र ईश्वर के दूत, एक कारण नहीं है। वैसी संभावना दीख नहीं पड़ती है। किसी के समझ के मुताविक अगर है, तो स्थिति को स्पष्ट करने की कृपा किया जाव।

फिर इन नामकृत धर्मों के अन्दर लोग कैसे शामिल हुए? खुशी से शामिल हुए, धर्म के आकर्षक गुणों के कारण शामिल हुए, राजकीय दवाव के कारण प्रजागण शामिल हुए, या धोखे में, प्रलोभन में पड़जाने के कारण शामिल हुए इत्यादि बातें विचारणीय है। आज तक जो कुछ भी मैने जाना, अधिक संख्या में लोग प्रलोभन के धोखे में पड़ कर उस नामकृत भिन्न धर्म के अन्दर शामिल हुए हैं। इस से भी कहीं अधिक संख्या में, कुछ सैकड़ों वर्ष पहले, राजकीय दवाव के कारण लोग शामिल हुए। वैसा मैने सुना है। यह झूठ तो नहीं है; क्यों कि अभी भी कुछ नामकृत भिन्न धर्मों को कई देशों मे राजकीय संरक्षण मिला है।

इन नामकृत भिन्न धर्मों का ईश्वरीय संरक्षण नहीं है। बेचारा वह भिन्न धर्म भी कैसा धर्म है, जो इतना कमजोर है, कि राजकीय संरक्षण के विना, टिक नही सकता

है। पनप नहीं सकता है। इसके अलावे बहुत से लोग उस चित्र धर्म के युवती की प्यार की मजबूरी में पड़कर, धर्म के प्यार के मजबूरी के बिना हीं, नामकृत भिन्न धर्म मे शामिल हुए है। वैसे नामकृत भिन्न धर्मों के सहज, सरल जिंदगी है; शायद उसीका की प्रलोभन प्रधान रहा है। मेने अभी तक न जाना और न कहीं सुना है कि किसी भक्त की आत्मा, किसी भक्त का हृदय, किसी नामकृत भिन्न धर्म के द्वारा, ठीक उसी तरह आकर्षित हुआ, जैसे मैगनेट की शक्ति के द्वारा, लोहा आकर्षित होता है।

कैसा चित्र धर्म, कैसा भिन्न धर्म ग्रन्थ है, जिसमें वह ताकत नहीं कि अन्दुरुनी दृधाव के विना या राजकीय सरचण के विना ही, अपने आप टिक जाए। जिसमें यह बिशालता नहीं है, जितना विशाल ईश्वर है। जिसमें वह आकर्षण नहीं है, जितना आकर्षण ईश्वर में है।

अतः उन नामकृत भिन्न धर्मों के गुमराहों से अलग कुछ लोग परंपरा में ही रह गए। उस परपरा में रह गए, जो उन नामकृत धर्मों के आगमन के अनगिनत सालों पहले से मानव पात्र के समाज में चली आ रही है। और वह परंपरा ईश्वर के सनातन नियमों, एव ईश्वरिय कुल के ही कुलधर्म का परपरा है।

भिन्न धर्मों की शुरुआत की तारीख भी है। शुरुआत की तारीख के आधार पर उन भिन्न धर्मों की उम्र भी गिनी जाती है। किन्तु परपरा की तारीख नहीं है। अतः

उम्र भी नहीं है। कब शुरु हुआ, कितने दिन बीते, कोई नहीं बता सकते है, अनादि है, असिम है। ठीस उसी तरह ही जैसा ईश्वर अनादि है और असीम है। यह परपरा ने व्यक्तिगत है और नही उसका कोई नाम है जिससे कि, इस परंपरा को भिन्न [distinel] बनाया जाए।

एक मात्र परंपरा इस का नाम है। किसकी परंपरा है! ईश्वर की परंपरा है। ईश्वर के कुल के देवताओं, देवियों, अवतारीयों, पित्तरों मनुष्यों एवं आदमियों की परंपरा है। सभी एक ईश्वरीय कुल में हैं।

इसके अलावे इस सम्बन्ध में और कहा ही क्या जा सकता है। इस परम्परा म न कोई राजकीय संरचण और न कोई प्रकार का प्रलोभन हो है। अपने कुल के अपने सरचण के लिए कठिन पवित्र जीवन है, संयम नियम का जीवन है। ईश्वर की कृपा को अपने योग साधना (exer-tion) से प्राप्त करने का प्रलोभन है। क्यों; क्या जरुरत है हृदय को कठोर बनाकर परम्परा में बने रहने का ?

मात्र एक आकर्षण है और वह यह कि अपने कुल व ईश्वरीय कुल के तरफ एक मर्यादा पूर्ण असीम खिंचाव है। लोक या परलोक में अपने ही कुल मे बने रहने का धरती से स्वर्ग तक प्रसारित (extended) अपने ही कुल को जान लेने का और कुलों को सचालन करने वाले को जान लेने का उनके निकट तक ही पहुँचने का असीम अदृश्य प्रलोभन हैं।

जिसने ही अपने कुल के, ईश्वरीय कुल के अदृश्य आकर्षण को जान सका; वे गरीबी में ही मरना पसंद किया; परन्तु ईश्वरीय प्रेरणा से युक्त कुल के निज परम्परा को तोड़कर; अमीरी में जीना पसन्द नहीं किया। ईश्वर से ही अलगाव पैदा करने वाले सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं किया।

माना कि भिन्न नामकृत धर्मों के द्वारा पैगम्बर को, ईश्वर पुत्र को या अवतारी को जाना जा सकता है पर कुल धर्म के द्वारा तो पैगम्बर ईश्वर पुत्र या अवतारी के कुल को ही जाना जा सकता है। अपना कुल सहित सभी के कुलों को संचालन करने वाले को ही जाना जा सकता है।

उदाहरणार्थ – अगर क्रिस्तान धम के द्वारा क्राइस्ट को जाना जा सकता है तो कुल धर्म के द्वारा क्राइस्ट के दैविक कुल को ही जाना जा सकता है।

अत: अलग से केवल एक ईश्वर पुत्र को जानने और उनके नाम पर अपने को अलग कर लेने की क्या आवश्यता है। इसके अलावे संसार में मैंने ऐसे ग्रन्थ भी देखे, जिनका नामकरण नहीं है। किसी प्रभावशाली तपस्वी के मुख से निकला जरूर है। लेकिन उनके नाम से यह ग्रन्थ नामकृत नहीं है। ज्ञान को अनुभव करने वाले का नाम नहीं है। कैसे ज्ञानी थे? कैसे सकलन कर्त्ता थे?

धन दौलत का लोभ को तो छोड़िये; अपना पाया हुआ ज्ञान, अपना सकलन किया हुआ ज्ञान तक को अपना कहने का लोभ नहीं था। अपने नाम से भी ग्रन्थ का नाम रखने

का अपने जाति के नाम से ग्रन्थ का नाम रखने का, अपने कौम या गिरोह के नाम से ग्रंथ का नाम रखने का या अपने देश के नाम से ग्रंथका नाम रखने का लोभ मन में नहीथा

उदाहरण के तौर पर – वेद, चारों वेद (वरन पांचों वेद)।

वेद शब्द संस्कृत के विद् धातु से बना है। विद् का अर्थ है जानना (to know) और वेद का अर्थ है ज्ञान (knowledge)। अतः वेद शास्त्र का माने ज्ञान शास्त्र है। मात्र इसी नाम से छोड़ दिया गया। उस ज्ञान को पानेवाले अपना ज्ञान कहकर दावी कर सकते थे और इसी तरह के दावी में सचमुच में कोई अड़चन नहीं था। वेद शब्द के आगे अपना नाम देकर अपने को अमर कर सकते थे। पर उसने वैसा नहीं किया। क्यों वैसा नहीं किया?

उत्तर साफ है। वे ज्ञान पाये तो जरूर थे, लेकिन वे ज्ञान उनके नहीं थे। ईश्वर से सम्बन्धित ईश्वर के ही असीम ज्ञान थे! ईश्वर के ज्ञान को ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त किये थे। इसी कारण उस तपस्वी ने, ऋषि ने; मुनि ने वे ज्ञान ईश्वर के ही कुल के मानव मात्र के लिए; उनके सही मार्ग दर्शन के लिए प्रगट करके जस के तस छोड़ दिया।

इसी प्रकार उपनिषदों को लीजिए। कोई भी उपनिषद ज्ञानियों के नाम से नामकृत नहीं है। उपनिषदों में सबसे उत्तम इशावास्योपनिषद का उदाहरण पेश करता हूँ। ईश्वास्म का अर्थ है, सब कुछ ईश्वर का। पर उपनिषद के

ऋषि का नाम नहीं है ! इसका मतलब तो यही है न कि ज्ञान ईश्वर का कृपा ईश्वर की और ज्ञान पाने वाला ऋषि भी ईश्वर का। जहां ज्ञान की सीमा इतना तक पहुँचे कि सब कुछ ईश्वर का ऋषि अपने भी ईश्वर का, वहाँ ऋषि के नाम का गुंजाईश ही क्या है ?

पुराण शास्त्र भी ईश्वरीय कुल के ईश्वरीय शक्ति से युक्त देवों और देवियों के नाम का ही है। उनके उपासना का है। संकलन कर्त्ता का नहीं है। उन सबसे भी कहीं अधिक मन्त्र शास्त्रों तन्त्र शास्त्रों का तो कहना ही क्या है। इतने अनूठे इतने प्रभावशाली इन शब्द मालाओं को किसने प्रथम प्रयोग किया, कुछ भी पता नहीं है। इतना पुराना होते हुए भी अभी तक इतना प्रभावशाली है कि पश्चिमी देशों के सारे विज्ञान (Science) के प्रगति के गुमान को ही चकनाचूर कर दिया है। उदाहरणार्थ—स्व० श्री पी० सी० सरकार के मन्त्र, यन्त्र एवं तन्त्र शक्तियों से युक्त जादुही प्रदर्शन।

भारत में तो यदा कदा, मन्त्र यन्त्र एवं तन्त्र के अभूतपूर्व प्रभाव को देखकर भिन्न धर्मों के धर्मावलम्बी भी स्वयं ही आकर्षित हो जाते हैं और निज भिन्न धर्म के अनुयायियों से बचकर अपना वेश बदलकर, कुछ सालों तक सन्यासियों के संग कामाख्या और कामरुप आदि स्थानों में दीक्षा पाते हैं और ज्ञान पाकर मन्त्रों, यन्त्रों और तन्त्रों की शक्तियों के फायदों चोरी छिपे उठाते हैं। मन्त्र यन्त्र-तन्त्र इतना पुराना होते हुए भी आज तक इतना प्रभावकारी है कि

कहा नहीं जा सकता है, लिखा नहीं जा सकता है। इसका क्या कारण है ?

बिना राजकीय संरक्षण के, बिना जातिए, कौमिए संरक्षण के इतना प्रभावशाली है। बिना प्रचारक के अन्य नामकृत धर्मों तक के अनुयायियों को आकर्षित करने की इतनी अभूतपूर्व शक्तियां है।

वैसा होने का क्या कारण हो सकता है ? कोई कारण; इसके अलावे नहीं है कि पंच शक्ति, तन्त्र शक्ति एवं यन्त्र शक्ति का ईश्वरीय शक्ति से सीधा सम्बन्ध है और इनको उपयोग उपयोग करने वालों का भी ईश्वर से सीधा सम्पर्क है। तप ध्यान, योग साधना के द्वारा ईश्वर से सीधा सम्पर्क है। केवल यही एक कारण है। अन्यथा वे विचित्र शब्द समूह, अपने आप में कैसे प्रभावशाली होते। साधक और शक्ति के बीच में कोई बिचौतिया (mediator) नहीं है। भिन्न धर्म जैसे कोई द्वारा (Via-media) नहीं है। वरन प्रयोग करने वाले साधना के द्वारा सीधे ईश्वर से शक्ति प्राप्त कर उन विचित्र शब्दों में निहित मन्त्र शक्तियों का ईश्वर के कुल के कल्याण के लिए ही उपयोग करते हैं सम्भवतः ईश्वर की शक्तियों को मन्त्रों यन्त्रों तन्त्रों के द्वारा ईश्वर के सृजित जीव मात्र के लिए उपयोग करने के कारण ही प्रभावशाली है।

तब यहां पर, एक बात साफ हो जाती है कि कुल + ईश्वर = कुलेश। से सीधे सम्पर्क रखने के कारण कुल योगी

को कुलेश्वर की शक्तियां ही प्राप्त होती है और वर्त्तमान मैं अपने कुल के कर्ता, उन शक्तियों को कुलके कल्याण केलिए ही उपयोग कर सकते हैं। इन सब के विपरित नामकृत भिन्न धर्मों के अनुयायियों को, उन धर्मों के नियमों के अधीन पैगम्बरस्तर(Level) ईश्वर के,पुत्रस्तर तकही सीमीत रखे जाने के कारण, कुलेश्वर की शक्तियों से वे बंचित हो जाते हैं पैगम्बर या ईश्वर-पुत्र के दैविक कुल के ज्ञान से वे वचित हो जाते हैं और अपने कुल के ज्ञान से भी वंचित हो जाते है। कहीं के नही रह जाते हैं। अब भगवत गीता (Song Celetial) को लीजिए। किसका गीत? भगवान का गीत कमाल है। नाम देने वाले उसको श्री कृष्ण का गीत भी कह सकते थे। क्यों कि उनके श्री मुख से ही निकली है। लेकिन नहीं। क्यों कि उन्होंने श्री कृष्ण के शरीर में कुलेश्वर की शक्ति के प्रचुर अंश को पहचाना था।

भागवत गीता किसी खास व्यक्ति का नही है। किसी खास जाति, समुदाय या धर्मावलम्बियों का नही है। कुलेश्वर के कुल के मानव मात्र का है। भिन्न धर्म के धर्मिक बन्धनों से रहित पवित्र मानव मात्र केलिए कल्याण कारी. भगवान गीता के पंक्तियों में निहित उपदेश उतना ही बिशाल है, जितना विशाल भगवान है। इतना ही आकर्षक है, जितना आकर्षक भगवान है।

यही कारण है कि भगवान गीता से व्यक्ति ही आकर्षित

नहीं होते, वरण राष्ट्रों तक आकर्षित होते है और राष्ट्रीय अनुवाद भी किए गए हैं। कहीं कहीं तो राष्ट्र के नहीं चाहने पर भी उस राष्ट्र के इतने अधिक व्यक्ति एवं परिवार भागवत गीता की ओर आकर्षित हो चुके हैं कि नेताओं को राष्ट्र को प्रशासकीय आदेशों द्वारा रोक लगानी पड़ती है। अपने आप, ऐसा ही आकर्षक ग्रन्थ को धार्मिक ग्रन्थ कहना उचित है।

बिना राजकीय सरंक्षण के बिना प्रचारक के बिना प्रलोभन के भागवत गीता में इतना आकर्षण क्यों है। ईश्वर की वाणी है, ईश्वर का ज्ञान है, और ईश्वरीय अवतारी पुरुष के श्रीमुख से सीधे प्रगट हुई है। जीव मात्र के लिऐ है। किसी व्यक्ति जाति समुदाय का व्यक्तिगत वाणी नहीं है। और उनसे सम्बधित किसी व्यक्तिगत ज्ञान भी नहीं और न किसी नामकृत धार्मिक संस्था का ही है। केवल इसी कारण भागवत गीता इतना व्यापक है और इतना अकर्षक है। स्वतंत्र रुप से अनुसरण करने लायक हैं। तो अब इन तथ्यों की पृष्ठ भूमि में एक तरफ नामकृत भिन्न धम का प्रभाव, उसका आकर्षण और दूसरी तरफ ईश्वर से चली आ रही परपरागत कुलधर्म का प्रभाव और उसका आकर्षण को खुद से मिलान करके देखिए। दोनों तरफ की जीवन पद्धति को अपने तर्क की कसौटी में परख करके देखिए। और खुद से अपने जिन्दगी का ही नही वरन जीवन का सही रास्ता निकालिए।

शास्त्रों के जैसा ही कुलेश्वरो के अवतारी पुरुषों का भी नाम नही है। भगवान राम, श्री राम, पुरुषोत्तम राम या केवल राम कहिए। राम कोई नाम नही है और राम नाम का कोई अवतारीं पुरुष या व्यक्ति नहीं है। जैसा कि आप समझते हैं। राजा दसरथ के ज्येष्ठ पुत्र के शरीर में कोई दूसरी शक्ति ही मौजूद थी। उसके बाद भगवान कृष्ण, श्री कृष्ण या केवल कृष्ण या अन्य नाम कहिए। यह कृष्ण शब्द उनका नाम ही नही है। उस नाम के वे अवतारी पुरुष भी नही है। नन्द के एकलौता पुत्र के शरीर में कोई दूसरी शक्ति ही मौजूद थी। आप भी कहेंगे कि कैसा बुद्धबक रामो हैं; जो कहता है कि राम एवं कृष्ण कोई नाम नही है। और न उस नाम के वे पुरुष ही है। शरीर के रहते हुए भी जोहाँ; अन्य आदमियों के जैसा आदमी शरीरके रहतेहुए भी वे उस नाम के पुरुष नहीं है। कैसे? भला; शक्ति की भी शक्ति के सिवाय अन्य नाम हो क्या हो सकता है !

रॅकार+ओम कार (रँ+ओम) के समिश्रण से राम शब्द बना है। मंत्र "रँ" पर ब्रह्म (Supreme Power) को इंगित करता है; सम्बोधित करता है। मंत्र ओम; उन्ही के ढैविक कुल के ब्राह्मा, विष्णु, महेश को इंगित करता है, सम्बोधित करता है। इतनी भक्तियाँ दशरथ के जेष्ठ पुत्र के शरीर में निहित थी। ऋषि,

मुनि जिन्हों ने उनका नांम करण किया था; उन्हे उन शक्तियों का आभास उस शरीर में मिलने कारण ही राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र का नाम "राम" रखा था।

कर्षन्ति, आकर्षन्ति इति कृष्ण। कृष्ण का माने सांवला नही है। सांवला शरीर तो राम नाम का शरीर भी था। सांवला शरीर के कारण देवकी नन्दन का नाम कृष्ण नही रखा गया था।

मुनि गरगों ने देवकी के एकलौता पुत्र के शरीर में आकर्षण की अद्भूत भक्ति को पहचाना था। इतनी अद्भूत आकर्षण की भक्ति से युक्त होने के करणदेवकी पुत्र का नाम कर्षन्ति; आकर्षन्ति इति कृष्ण नाम रखा गया। अब बताइये; कहां कोई व्यक्ति विशेष है। वे महाशक्ति से आए; महाशक्ति की कृपा से रहे और फिर महाशक्ति (पर: ब्रह्म) मे ही वापस प्रवेश कर गए।

अतः भजन कीर्तनों में जप: तप में राम और कृष्ण के स्थूल शरीर तक ही अपने ध्यान को सीमित नही रख कर उसके बहुत आगे पर: ब्रह्म तक पहुचाना चाहिए। अन्यथा पूर्ण लाभ की आशा नही की जा सकती है।

अब इस शरीर रुप का नाम करण हो गया तो उस शरीर में निहित महान आत्मा (Super Power) का भी नाम करण हो गया। अब स्थूल शरीर नही रहा तब भी कोई भक्त या कोई योगी उस नाम से उस

महान आत्मा का आह्वान करें तो उसी शरीर रुप के ही दर्शनार्थ वे फिर प्रगट हो सकते हैं और प्रगट हुए हैं जैसे कि भक्तिन मीरा को भगवान कृष्ण का रुप जब चाहा तब शर्शन होता रहता था ।

उसीतरह शरीर रुप क नामकरण से आत्मा (power) का भी नाथकरण हो जाता है । अगर कोई कुल योगी अपने ही कुल के किसी दिवंगत आत्मा को उसी नाम से आह्वान करें तो वह आत्मा उसी शरीर रुप में प्रगट हो सकता है । योग निद्रा में तो कुल योगी के आत्मा का उस नाम के दिवंगतकेआत्मासाथ उसी शरीर रुप में दर्शन होना निश्चित है । किन्तु यह कुल धर्म के द्वारा ही सम्भव है ।

तो भला, राम और कृष्ण के तरफ कौन नही आकर्षित होता है । उन दो नामों को अन्तःकरण में धारण कर कौन सुख शान्ति प्राप्त करना नहीं चाहता है ? और फिर उन्हीं नामों, परमात्मा, महान आत्मा के आह्वान के सिलसिले में अपने कुल के अपने पूर्वजों के ही आत्माओं का भी उनके नामों से आह्वान करना नहीं चाहता है ।

श्री राम ने अपने पिता राजा दशरथ की आज्ञाका पालन करते हुए चौदह वर्षों का वनवास किया था और इस तरह पिता के जिन्दगी में पिता की सेवा किया था और गया के निकट पिता की मृत्यु का समाचार पाने पर गया में पितृ पिंड भी किया था और इस तरह पिता के आत्मा की भी पूजा की थी । श्री कृष्ण ने सयाना होने के साथ राजा कंस

के कारागार (जेल) से राजा कंस को मारकर कठिन कारावास से छुड़ाया था और इस तरह अपने माता पिता की सेवा की थी ।

अतः महाशक्ति से शक्तिमान वे दोनों हो; माता-पिता की सेवा करने के कारण कुलयोगी हुए, कुलधर्मी ही होना चाहिये । इससे बढ़कर कोई दूसरा धर्म ही नहीं है ।

जो भी हो, जैसा भी हो, आदमी परम्परा को छोड़कर अपने कुल निष्ठा को छोड़कर जिस गिरोह में भी, जिस संस्था में भी शामिल हो गया हो, वहां उसे एक निष्ठा कायम करना चाहिए था । लेकिन वैसा भी तो नहीं हुआ । जबतक वे ज्ञानी पुरुष, वे पैगम्बर, वे ईश्वर-पुत्र धरती पर जीवित थे, श्रद्धा एक थी, भक्ति एक थी, तरीका एक था और सभी अनुयायी एक सूत्र में बंधे हुए थे । समय का चक्र ने परिवर्तन लाया । पैगम्बर, ईश्वर के पुत्र; तपस्वी एवं अवतारी धरती पर स्थूल रुप में नहीं रहे । अनुयायियों का उनसे सीधा सम्पर्क हट गया ।

कालान्तर में कुछ अनुयायियों के लिए पैगम्बर के ईश्वर पुत्र के तपस्वी के वे सन्देश, पुराने पड़ गए । उनके समय में बने वे नियम भी पुराने पड़ गए । जो अनुयायी पुराने उपदेशों को पुराने नियमो के द्वारा मानते रहे, पालन करते रहे; वे रुढ़िवादी कहलाये और कुछ अनुयायी जिसने नये जमाने के मुताबिक व्यवहारिक अपनी सुविधा के मुताबिक उपयोगी सांचे में अपने को ढालने की कोशिश

की, वे नामकृत भिन्न धर्म के मूल रूप में परिवर्तन लाए और अपने संशोधित नये भिन्न धर्म के नये संस्था का नया नाम भी रखे।

मूल भिन्न धर्म का बँटवारा हुआ। कहीं दो; कहीं तीन। बँटवारा के मुताबिक अलग-अलग गुट बने और उसके अलग-अलग संस्थापक मंडल बने। वही एक ही मूल भिन्न धर्म के अन्दर कुछ परिवर्त्तनों के साथ भिन्न-भिन्न धर्म के गुट बने। एक बाप के दो तीन बेटों के बीच बाप के सम्पत्ति जमीन जायदाद का या एक राजा बेटों के बीच राज का बँटवारा जब होता है तो यह आदमी के समझ सकने की बात हो जाती है। समाज में वैसा बँटवारा होता आया है और होता ही रहेगा।

किन्तु एक ज्ञानी पुरुष, एक पैगम्बर, एक ईश्वर पुत्र के अनुयायियों के बीच धर्म का भी बँटवारा हो जाता है। यह सुनकर; यह जानकर मुझको बहुत आश्चर्यचकित होना पड़ा है। मैं सोचता ही रह गया कि क्या धर्म का भी बँटवारा हो सकेगा। यह मेरे समझ मे नहीं आ सका। ईश्वर ने अपने आदमी का दिमाग बनाया कैसा है? आपके अथाह भण्डार से खोजा ज्ञान आपके प्यारे किसी एक ने। और बिना मेहनत उसे बँटवारा किया कुछ अनुयायियों ने॥ फिर उसी ज्ञानी पैगम्बर ईश्वर के पुत्र के नामपर उन्होंने। करोड़ों लोगों को गुमराह किया, कुछ ढोंगी धर्म के ठीकेदार ने॥

मेरे समझ से तो धर्म कोई बेजान ठोस पदार्थ नहीं कि जिसका टुकड़ा किया जाए और टुकड़ा किये बिना तो बँटवारा भी संभव नहीं है।

इसके अलावे उसे खोजने वाला दूसरा व्यक्ति था और बँटवारा करने वाले दूसरे व्यक्ति है। तो वैसा गैर सम्पत्ति "धर्म" को बांट लेने का नैतिक या संवैधानिक अधिकार क्या है?

अनुयायी तो अनुयायी है। लेकिन तब भी उन्होंने धर्म के बँटवारे को संभव किया। बलिहारी है उन अनुयायियों की समझ जिसने धर्म का बँटवारा का संभव किया।

अब धरती पर जन्म लेने पर साधना होते के साथ आदमी गुमराह हो जाता है। सामने बहुत से भिन्न धर्म है। उन भिन्न धर्मों के छोटे बड़े बहुत धर्म गुरु है। एक धर्म गुरु अनुयायियों को अपने तरफ खींच रहा है और दूसरे धर्म गुरु अपने तरफ। एक भिन्न धर्म के धर्म गुरु दूसरे भिन्न धर्म के धर्म गुरु की ओर संदेह की दृष्टि से देखते हैं। इतना ही नहीं एक ही मूल भिन्न धर्म के अन्दर से विभाजित दो गुटों के धार्मिक गुरु एवं अनुयायी भी एक दूसरे ही के खिलाफ तैयार खड़े हैं। अपने सामने एक दूसरे को देख नहीं सकते हैं। ईश्वर के नाम पर भी एक स्थान पर बैठकर विचार विमर्श करने की तो बात ही दूर रही।

नतीजा यह हुआ है; भिन्न धर्म के नाम पर; भिन्न

की, वे नामकृत भिन्न धर्म के मूल रूप में परिवर्तन लाए और अपने संशोधित नये भिन्न धर्म के नये संस्था का नया नाम भी रखे।

मूल भिन्न धर्म का बँटवारा हुआ। कहीं दो; कहीं तीन। बँटवारा के मुताबिक अलग-अलग गुट बने और उसके अलग-अलग संस्थापक मंडल बने। वही एक ही मूल भिन्न धर्म के अन्दर कुछ परिवर्त्तनों के साथ भिन्न-भिन्न धर्म के गुट बने। एक बाप के दो तीन बेटों के बीच बाप के सम्पत्ति जमीन जायदाद का या एक राजा बेटों के बीच राज का बँटवारा जब होता है तो यह आदमी के समझ सकने की बात हो जाती है। समाज में वैसा बँटवारा होता आया है और होता ही रहेगा।

किन्तु एक ज्ञानी पुरुष, एक पैगम्बर, एक ईश्वर पुत्र के अनुयायियों के बीच धर्म का भी बँटवारा हो जाता है। यह सुनकर; यह जानकर मुझको बहुत आश्चर्यचकित होना पड़ा है। मैं सोचता ही रह गया कि क्या धर्म का भी बँटवारा हो सकेगा। यह मेरे समझ मे नहीं आ सका। ईश्वर ने अपने आदमी का दिमाग बनाया कैसा है? आपके अथाह भण्डार से खोजा ज्ञान आपके प्यारे किसी एक ने। और बिना मेहनत उसे बँटवारा किया कुछ अनुयायियों ने॥ फिर उसी ज्ञानी पैगम्बर ईश्वर के पुत्र के नामपर उन्होंने। करोड़ों लोगों को गुमराह किया, कुछ ढोंगी धर्म के ठीकेदार ने॥

मेरे समझ से तो धर्म कोई बेजान ठोस पदार्थ नहीं कि जिसका टुकड़ा किया जाए और टुकड़ा किये बिना तो बँटवारा भी संभव नहीं है।

इसके अलावे उसे खोजने वाला दूसरा व्यक्ति या और बँटवारा करने वाले दूसरे व्यक्ति हैं। तो वैसा गैर सम्पत्ति "धर्म" को बांट लेने का नैतिक या संवैधानिक अधिकार क्या है?

अनुयायी तो अनुयायी है। लेकिन तब भी उन्होंने धर्म के बँटवारे को संभव किया। बलिहारी है उन अनुयायियों की समझ जिसने धर्म का बँटवारा का संभव किया।

" अब धरती पर जन्म लेने पर सामना होते के साथ आदमी गुमराह हो जाता है। सामने बहुत से भिन्न धर्म है। उन भिन्न धर्मो के छोटे कई बहुत धर्म गुरु है। एक धर्म गुरु अनुयायियों को अपने तरफ खींच रहा है और दूसरे धर्म गुरु अपने तरफ। एक भिन्न धर्म के धर्म गुरु दूसरे भिन्न धर्म के धर्म गुरु की ओर संदेह की दृष्टि से देखते हैं। इतना ही नहीं एक ही मूल भिन्न धर्म के अन्दर से विभाजित दो गुटों के धार्मिक गुरु एवं अनुयायी भी एक दूसरे ही के खिलाफ तैयार खड़े हैं। अपने सामने एक दूसरे को देख नहीं सकते हैं। ईश्वर के नाम पर भी एक स्थान पर बैठकर विचार विमर्श करने की तो बात ही दूर रही।

नतीजा यह हुआ है; भिन्न धर्म के नाम पर; भिन्न

धार्मिक गुट के नाम पर आजकल एक दूसरे पर गोलियां चल रही हैं। बम फेंके जा रहे है। इसका मतलब तो यह हुआ कि आज भिन्न धर्म के धर्म युद्ध चलने लगे हैं। जहाँ धर्म के नाम पर एक धार्मिक की दूसरे धार्मिक के द्वारा हत्याएं होती हो, और उस हत्या को भिन्न धर्म स्वीकार करता हो; तो वह भिन्न धर्म ही क्या भिन्न धर्म है। यह तो धर्म के नाम पर अधर्म है।

कैसे धर्म गुरु है? कैसे प्रचारक है? जो संसार में धर्म की लड़ाईयों को रोकने में सक्षम नही है। ऐसा मालुम होता है कि भिन्न धर्म के धार्मिक गुरु किसी को धर्म परिवर्तन कराने में तो सक्षम हैं। परन्तु अपने परिचित अपने धर्म के अनुयायीयों के हृदय को ईश्वर के जैसा विशाल बनाने में वे सक्षम नही हैं।

भिन्न धर्मों के अन्दर वैसी विषम परिस्थिति से तो बिना धर्म के इस पृथ्वी पर रहना अच्छा है। अपने में, परिवार में ही सीमित रहकर सीधे ईश्वर के अधीन; ईश्वर की भक्ति में ही लीन रहना अच्छा है। सृष्टि के अन्दर खुले आसमान के नीचे; भिन्न धार्मिक संरक्षण के बिना, प्रकृति के गोद में सोना सच्छा है। प्रकृति के पूजारियों के बीच रहना अच्छा है। और इस तरह अपने ही कुल के माता पिता का; पूर्वजों का; ईश्वर के साथ; अपने से पूजा करना अच्छा है।

धार्मिक विचारों में इतनी मत भिन्नता रहते हुए भी

भिन्न धर्मों के सभी ठीकेदार, अनुयायीयों का मृत्यु के बाद कर्म के मुताबिक पहुँचने का ठिकाना दो ही बतलाते है।

एक स्वर्ग, एक नरक, एक जन्नत, एक जहनुम, एक Hell एक Heaven इत्यादि। और धरती पर उतर आने का श्रोत भी एक ही बतलाते है। दम्पति को सतान ईश्वर देते है; अल्हा देते हैं; इत्यादि।

इसी से प्रमाणित हो जाता है कि धर्म को भिन्न धर्म (distined religion) बनाने का ढोंग मन गढ़न्त है। आने का श्रोत जब एक ईश्वर है तो वापस लौटाने का ठिकाना, ईश्वर से हटकर, स्वर्ग-नरक; जन्नत-जहनुम, Hell-Heaven क्यों रहेगा?

जल्दी या कुछ बिलब से (देर या सवेर) भाया स्वर्ग या भाया नरक; Via Heaven or Via H ll, अन्तिम में वापस पहुँचने का ठिकाना तो वही एक श्रोत; ईश्वर के पास तक का ही होना चाहिए। अपने आप होना चाहिए। तो इस तरह आने जाने की क्रिया में धर्म के ठीकेदारों का क्या योगदान है! मेरे समझ में तो नही आया है?

जो ईश्वर से आते है और ईश्वर में ही समाविष्ट होने का इरादा रखते हैं, वे भला रास्ते में, ईश्वर तक के यात्रा के रास्ते में क्यों झगड़ा करते? भिन्न धर्मों और गुटों के नाम पर अपने को क्यों गुमराह करते!

ईश्वर के धाम तक का तीर्थ यात्रा करने वाले यात्री जिंदगी में, रास्ते में ही झगड़ा कर लेंगे, ऐसा मेरे समझ से

संभव नही है। क्योंकि सब तीर्थ यात्रीयों के मन में मनसा (inner desire) तो एक है, ठिकाना भी एक है, तो फिर झगड़ा का गुंजाईश कहाँ ?

ईश्वर के धाम तक का तीर्थ यात्रा करने की इच्छा रखने वाले, जो भी रास्ते में झगड़ते हैं, वे सचमूच में ईश्वर को नही समझते हैं। धर्म को भी नही समझते हैं। वे केवल झगड़ा कराने वाले नाम कृत भिन्न धामिक ठीकेदारों कोही समझते हैं।

इस हालत में तो, अनुयायीयों भिन्न धर्म से कोई लाभ होने की उम्मीद ही नही है। और फिर भिन्न धर्म के ठीकेदारों के, ईश्वर के बदले में, अपने को ही अनुयायीयों समक्ष सर्वे सर्वा प्रस्तुत करने के कारण, भिन्न धर्मों के धार्मिक गुरुओं के मुकाबले का Proxy भी नही है। और ये भिन्न धर्म के ठीकेदार कौन है ? उनका एक अतिरिक्त नाम हैं। धामिक संस्था के पद स्तर के मुताबिक एक विशेष पदनाम से विभूषित हैं। एक विशेष प्रकार का पहनावा पहनते हैं। हाथ में हमेशा एक धार्मिक पुस्तक पकड़े रहते हैं। और बहुत कम बोलते है।

इसके अलावे इ में और कोई विशेषता नहीं है। उनको उस विशेष पद पर नियुक्त करने का मापदड धामिक अधार पर, पुण्य का सचय, भक्ति का संचय, ही होना चाहिए। धर्म का मकसा है। इस कारण पुण्य का सचय और भक्ति का संचय को माप दड बनाना ही युक्ति संगत

मालुम पड़ता है। यह भी उनमें नही है।

अगर यह धार्मिक गुरु पुण्य का, शक्ति का, सचय, सचमूच में किया होता, तो ईश्वर के पुत्र से या ईश्वर से, निश्चय ही कोई एक शक्ति प्राप्त कर सकता था। और उस शक्ति को लोगों के समक्ष प्रदर्शित कर सकता था। प्रदर्शित नही करने पर भी बहुतों को उनमें निहित उस शक्ति का आभास मिल सकता था। और उस शक्ति को लोगों के कल्याण के लिये भी उपयोग कर सकता था। परतु नाम के धर्म गुरु तो हैं, पर शक्ति का अर्जन तो एक पैसा का भी नही है।

ऐसे धर्म गुरुओं बहुतों के माता पिता का पता नही है। वश का कुल का, तो एक दम पता नही है। न आगे का और न पीछे का ही पता है। कितनी भयानक परिस्थिति हैं।

बचपन में कही गुंजाईश नही हुआ तो धार्मिक संस्था में शरण मिली। सामना होने पर कुछ पढ़ने लिखने के बाद, संस्था के अन्दर ही नौकरी मिली। और बाद में धर्म के ठीकेदार के पद में भी पहुँच गये। इतना तक में भी उसने माँ बाप को ढूंढने का प्रयास नही किया। वश को ढूंढने का प्रयास नही किया। धामिक संस्था की गुरु की वफादारी को निभाते हुए भी स्वतत्र विचार धारा के अधार पर आत्म सम्मान को फिर प्राप्त करने का प्रयास नही किया।

अतः ये वैसे ही साधारण जन है, जैसा अन्य व्यक्ति हैं। फर्क इतना ही है, कि अपने आत्म सम्मान की बलि पर, अपने कुल सम्मान की बलि पर; ये आदमी होकर भीं, भिन्न धर्म के नाम पर आदमी का चारवाई करते हैं। अन्यथा ईश्वर की सृष्टि में, सृजन करने की क्रिया में, इनका कुछ भीं योगदान नहीं है। वैसे ही भिन्न धर्म के ठीकेदार, वैसे हीं आदमी का चरवाह यह बतलाते है, कि उनका उस भिन्न धर्म को जो मानेगा वह स्वर्ग में जाएगा। स्वर्ग में पहुँच कर बहुत सुख पाएगा।

स्वर्ग कब पहुँचेगा? जिंदा रहते नही। मरने के बाद स्वर्ग जायेगा। भोले साधारण जन का मन गुमराह होना स्वभाविक है। वे बेचारे गरीब, भोले देहाती, स्वर्ग का नाम नही जानते थे। स्वर्ग सुख का नाम सुनने के साथ लालयित हो गए। उस भिन्न धर्म के ठीकेदार, आदमी होकर आदमीं के चरवाह को, कैसे मालुम हुआ कि उस भिन्न धर्म कें अनुयायी मरने के बाद स्वर्ग गए या नरक गए है?

बेचारा, खुद को स्वर्ग और नरक का अनुभव नही है। वे सभी अस्थायीं तौर पर मरकर भी देखा नही है, कि स्वर्ग और नरक क्या है! कहाँ पर है? इसलिये उस बेचारे को तो खुद को भी यह विश्वास नही है कि मरने के बाद वे कहाँ जाएँगे? और वे क्या होंगे! तो फिर वैसे आदमी के द्वारा, भिन्न धर्म के धार्मिक पद हासिल करने के बावजूद भी, नामकूत भिन्न धर्म के डंडे से, अपने अनुयायियों को

भेड़ों की तरह, स्वर्ग की ओर कैसे खदेड़े लिये चलेंगे?

वे बेचारे सब खोखलापन को समझते है लेकिन वे करे क्या? नामकूत भिन्न धार्मिक संस्था का नमक जो खाएँ है। वे बेचारे नमक हरामी कैसे कर सकेंगे? इसलिये अपनी जिम्मेवारी को टालने के लिये कहते रहते है कि मरने के बाद स्वर्ग जाएगा। मरने के बाद स्वर्ग सुख मिलेगा।

मेरा यह पूछना है, कि भिन्न धर्म के कोई भी अनुयायी मरने के पहले, बहुत पहले, स्वर्ग का अनुभव, स्वर्ग का दर्शन क्यो न कर सकेगा? धर्मों के ठीकेदार, भिन्न धर्मों के ठीकेदार, वैसा कर दिखाने को क्यों नही राजी होते है!

अगर कोई भिन्न धर्म के ठीकेदार, अनुयायी को, जीवित अवस्था में ही स्वर्ग का अनुभव कराने को, स्वर्ग का दर्शन कराने को राजी होता, तो शायद वैसे बहुत से भिन्न धर्मों का, वैसा प्रभावशाली होने का, अनुयायियों के द्वारा हो प्रथम जाँच हो जाना और असली या नकली प्रचार का भी वहीं पर्दाफाँस हो जाता। इसके अलावे यदि यह भी मान लिया जाय कि मरने के बाद ही अनुयायी को स्वर्ग या नरक की प्राप्ति होती है, तो वह अनुयायी मरने के बाद स्वर्ग चला गया या नरक चला गया इसके बारे में मालुम किनको होगा? भिन्न धर्म के ठीकेदार को मालुम होगा? या दिवंगत के वारिशदारों को मालुम होगा।

किनको मालुम होगा ? कैसे मालुम होगा ? धर्म के प्रचारक को तो, इस संदेह को भी देखने सुनने वालों के लिये साफ कर देना चाहिये। खुद संदेह दूर नही कर सकते हैं तो अनुयायियों को तरीका सिखला देना चाहिये। जिससे कि वे उस तरीका को अपना कर इस बात की सच्चाई को परख सके जान सकें। अपने को जानने लायक बना सकें। और जानकर यह संतोष कर सकें कि उनके परिवार का, उनके कुल का, एक सदस्य परकर स्वर्ग में पहुंच गया है। या ईश्वर के बराबर में सवालों का जबाब देने के लिए पहुंच गया है।

कुछ नही ! भिन्न धर्मों के धार्मिक ठीकेदारों का, प्रचारकों का सारा का सारा दवा, ढँकोसला है। भुलावा है। वे नामकृत भिन्न धर्म वैसे लोगों के लिये है, जिनको स्वर्ग के अनुभव से कोई मतलब नही है। केवल भिन्न धर्म के नाम पर एक गिरोह बनाने से मतलब हैं। नही तो धार्मिक लाभ का कोई न कोई एक उदाहरण तो लोगों के सामने पेश होता।

फिर धर्म के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति है कि कर्म के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति है ? धर्म के द्वारा कर्म है ? या कर्म के द्वारा धर्म ? शायद इस बात को बहुत सारे लोग मानेंगे; चाहे नामकृत जिस भिन्न धर्म के ही वे लोग हों, कि कर्म द्वारा ही धर्म है और धर्म के द्वारा ही स्वर्ग है। ऐसी बात बहुत से ज्ञानी बतला गए हैं। और रोज़मर्रा के व्यवहारों में भी

सूकर्म की मर्यादा को ही देखा जाता है।

"जैसा कार्य करोगे; वैसा फल पाओगे"

"As you sow, so you will reap"

जिंदगी में कर्म की जब इतनी मान्यता है, इतनी प्रधानता है तो, धर्म के ठीकेदारों को, भिन्न धर्म के अन्दर सूकर्म को ही प्रधानता देना चाहिए। और खुद को भी एक आदर्श सूकर्मी के रुप में लोगों को पेश करना चाहिए। जिससे कि भिन्न धर्मों के बाहर के लोग भी, वैसे आदर्श सूकर्म जिंदगी का अनुशरण कर सकें।

ऐसा अगर होता तो वह नामकृत भिन्न धर्म भी चमक जाता। और समाज भी सूकर्मियों का ही समाज होता। भिन्न धर्मों की मान्यताओं का अन्तर समाप्त हो जाता; और भिन्न धर्म के नाम पर, किन्हीं में आपसी मनमुटाव भी कभी नही होता।

अफसोस धार्मिक ठीकेदारों में इसी बात की कमी का ही है। और आजकल तो ऐसा हाल है कि भिन्न धर्म के अन्दर धर्म परिवर्तन तो हो गया, पर कर्म परिवर्तन नही हुआ। कैसा भिन्न धर्म है ? कैसा उस भिन्न धर्म के ठीकेदार है ? जो इतना भी सक्षम नही है कि धर्म परिवर्तन के साथ साथ कर्म का भी परिर्तन कर सकें।

मालुम ऐसा होता है कि ये भिन्न धर्म के ठीकेदार, भिन्न धर्म के नाम पर, केवल भिन्न धार्मिक संस्था का

व्यवस्थापक है। शायद इसी धन्धा में व्यस्त रहने के कारण ही, अपने अन्दर कोई शक्तिशाली व्यक्तित्व का भी विकास नही कर सकते हैं। जिस व्यक्तित्व के द्वारा ये सूकर्म की नीति से ही आमलोगों को प्रभावित कर सके।

लोग फिजूल ही अपने को भिन्न धर्म में परिवर्तन कर, ठीकेदारों की जकड़ में ले जाते हैं। जहाँ कर्म की, कर्त्तव्य की प्रधानता नही है। इसके बदले केवल भिन्न धार्मिक संस्था के मनगढ़न्त नियमों का ही प्रधानता है।

लोगों से, मैं, यहां पूछना चाहता हूँ; कि ज्ञानियों के बचनों के मुताबिक जब कर्म. कर्त्तव्य (करने योग्य काम) ही धर्म है, और कर्म के द्वारा धर्म होकर ही स्वर्ग है, तो हर तरह के वन्धनों से वधन रहित होकर, ईश्वर की खुली सृष्टि में सूकर्म को ही, कर्त्तव्य को ही, क्यों नही जकड़ कर पकड़ लेते है।

अपनी जिंदगी है, अपनी जीवन है। अपनी जिंदगी के अपने जीवन के कल्याण के लिये अपनी बुद्धि से ही काम लैना चाहिए और अवने स्वतंत्र स्वर से सूकर्म का हो धर्म करना चाहिए। और भिन्न धर्मों के ढोंगी धार्मिक गुरुओं का कभी ताबेदारी नही करना चाहिए।

—:)o(:—

जो भी हों। जो चाहे जितना भी ढींग हाँकले। अपने थोड़े से अनुभव से इतना तो कह सकता हूँ कि धर्म व्यक्तिगत लाभ के लिये है। व्यक्तिगत लाभ के द्वारा

अपने ही परिवार के, अपने ही कुल के लाभ के लिए है। संस्था के सामुहिक लाभ के लिये भी नहीं है। अपने सुकर्म से, अपने शुद्ध बुद्धि से, अपने साधना से, ईश्वर को, ईश्वर के शक्तियों को, अपने ही से अनुभव कर सकने के लिए हैं।

जो भी गुरु से, जिस भिन्न धर्म के गुरु हों, वे केवल गुरु के मार्ग दर्शक हैं। अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति तो अपने प्रयास से अपने हाथ में है। इसी तरह के मनोबल और निजी साधना के बलपर जीवित अवस्था में ही अपने को स्वर्ग का अनुभव कर सकते हैं। स्वर्ग के देवी देवताओं के दर्शन कर सकते हैं। अपने पूर्वज पित्तरों का दर्शन कर सकते हैं; उनके सूक्ष्म रुप मे, अपने पास ही होने का, भी अपने अन्दर अनुभव कर सकते हैं। इतना ही नहीं, अपने घर में अपने मृत्यू का, अपने सम्बन्धियों के मृत्यू का, कारण एवं समय भी जान सकते हैं। केवल अपने पवित्र रहन सहन के साथ, मन का ही झुकाव चाहिए। निर्मल शरीर में निर्मल मन हो चाहिए। और अन्य उपायों के द्वारा तो वैसा नहीं हो सकता है।

चिट्ठियों, पार्सल, तार आदि, किसी के द्वारा (c/o) से भी प्राप्त कर्त्ता को मिल जाति है। परंतु किसी को आत्मा, किसी दिवंगत की आत्मा, या स्थूल शरीर सहित कोई अनुयायी, भिन्न धर्मों के ठीकेदारों के द्वारा (c/o) से स्वर्ग के प्रबन्धक के पास पहुँच सकेगा। और फिर

उनके द्वारा ईश्वर तक पहुँच सकेगा; ऐसा कदाई संभव नह है।

इसके अलावे स्वर्ग में, या ईश्वर के दरबार में, नामकृत भिन्न धर्म का मोहर लगाकर भी नहीं पहुंच सकते हैं। वहाँ भिन्न भिन्न धार्मिक चिन्हों, संकेतों के द्वारा पहचान वाले की आवश्यकता नही है। वहाँ अपने आत्म पर केवल एक मात्र, सुकर्म का मोहर (Lavel) लगा कर ही पहुच सकते हैं।

लोग अपने प्रिय को सुन्दरतम, फूलों का पिरोया हुआ माला पहनाते हैं। आपके लिए अपने आत्मा से से अधिक प्रिय, और ईश्वर से प्रियतम और कौन हो सकते है? अतः आत्मा को अपनी जिंदगी का सुन्दरतम कर्मों का पिरोया हुआ माला ही पहनावें, और उनके द्वारा ईश्वर को सुन्दरतम सुकर्मों का स्वच्छ निर्मल माला ही भेंट करें।

ईश्वर की कृपा दृष्टि निश्चय ही आप पर पड़ेगी। जीवित रहते पड़ेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है। और जब आप कुलाचारी हैं, तो इसका लाभ, आपके साथ ही साथ आपके कुल को भी होता है।

बेकार की बातों से आदमी को बचना चाहिए। तर्कसंगत ज्ञान को ही अपने लाभ के लिए अपनाना चाहिए। नामकृत भिन्न धर्मों के मेले इस धरती पर लगे हैं। और उन भिन्न धर्मों के धर्म गुरु एवं प्रचारक वाक पटुता में

बहुत प्रवीन है। उनके लचकदार आश्वासनों के भुलावे में आदमी को नही पड़ना चाहिए। और वैसे झलमलों में पड़ कर अपनी आत्मा को जोखिम में नही डालना चाहिए।

यहाँ पर एक बात मैं अवश्य कहुंगा। एक सुझाव मैं अवश्य दुंगा, कि आदमी को क्षणिक (tem porary) अपने व्यक्तिगत लाभ की ही बात नही सोचना चाहिए। बल्कि हमेशा अपने कुल का ही लाभ सोचना चाहिए। अतः अपने कुल के लिए अपने ही गुरु बनें। पिता, गुरु और पुत्र चेला बनें। और पूर्वज पित्तर देवों के साथ इष्ट देवता बने और उन सभी के साथ ईश्वर अधिष्ठात्री पित्तर देव बने।

इस तरह अपने वंश में कुल में, गुरुओं का सिलसिला बना रहे और पूर्वज, देव एवं ईश्वर इष्ट देवता बना रहे। यह कुल धर्म है। इससे बढ़कर संसार में और कोई धर्म नही है। इसमें कुल के किसी का भी आत्मा कभी नही भटक सकती है।

आखिर कोई धर्मावलम्बी कुछ भी कहे, आत्मा अमर है। परमात्मा का अंश है। आपके निर्मल आत्मा को देर या सबेर ईश्वर तत्व में शामिल होना ही है। इसमें कोई संदेह नही है। किन्तु ईश्वर तत्व में शामिल होने तक की अवधि में आपके आत्मा की सेवा आपके ही उत्तराधिकारियों के द्वारा होती रहे। इससे बढ़कर; किसी के जीवन का, तमन्ना ही क्या हो सकता है? और ऐसा होना केवल कुल धर्म के द्वारा ही संभव है।

कुल धर्म की संक्षिप्त परिभाषा

कौल कोल कुल सोड़ा कहके पुकारते है तुझे।
कहने वाले सरल जन इसका अर्थ क्या बुझे ॥
तू दिल से हो नही कम से भी बिल्कुल कोल है।
स्वयं को पहचानने नही कि तू शक्ति के बल है ॥१॥

आइये प्यारे मैं बताऊँ इस शब्द की परिभाषा।
निश्चय ही उसे सुनकर जगेगी तरी जिज्ञासा ॥२॥

कुलेश्वरी कुलेश्वर के कुलज्ञ कोल कहात हैं।
ब्रह्म के ज्ञानी विप्र जन ब्राह्मण कहलाते है ॥३॥
यह कोई जात नही ज्ञानियों के एक स्तर है।
मुनि कहते ज्ञानों में कुल ही सब से उत्तम है ॥४॥

शिव के उपासक को लोग कहते है शैवाचारी।
विष्णु के उपासक को कहते है वैष्णवाचारी ॥४॥
ब्रह्म के उपासक को लोग कहते है ब्रह्मचारी।
कुलेश्वरी के उपासक को कहते है कुलाचारी ॥६॥

ब्रह्मा विष्णु महेश की माँ को कहते त्रयम्बकी।
इन्हीं से आरम्भ करती आदि कुल को त्रयम्बकी ॥७॥
त्रयम्बकी ही इस सृष्टि के कुलेश्वरी कहाते है।
कुलेश्वरीं कुलेश्वर के उपासक कोल कहाते है ॥८॥

मानसा में तु सदा से पूजा करते इन्हीं देवों की।
पत्नि संग घर में पूजा करते इन्हीं देवों की ॥६॥
अब बताओ तो तुझे कैसे नही तू ठेठ कोल हो।
ब्रह्म ज्ञानी से कुल ज्ञानी कैसे नही अनलोल है ॥१०॥

कौल कोल, कुल सोड़ा कहके पुकारते हैं तुझे।
कहने वाले सरल जन इसका अर्थ क्या बुझे ॥

" कुलम शक्तिः इति प्रोक्तम, अकुलम शिव उच्यते।
कुमम अकुलम्य सबधः कौलम अभिधियत ॥"

(कुलार्णव तत्र)

कुल धर्म क्यों ?

कुल का आधार क्या है ?

किशोरावस्था के बाद जब आदमी गृहस्थाश्रम में पहुँचता है, तो एक जोड़ा होकर पहुँचता है। पति और पत्नि। दो अलग अलग शरीरों का और उन शरीरों के अन्दर के दो अलग अलग आत्माओं का मिलन, और उस मिलन के फलस्वरुप उपजा एक मन ही दाम्पत्य जीवन है।

शुरु में उस दम्पति के कोई कार्य क्रम नही। कोई योजना नहीं। आपसी बन्धन में आपसी प्रेम ही एक प्रयोजन है। परन्तु यह दिन दूर नही, जब दम्पति के मन में पुत्र पाने की लालसा नही जगे। पुत्र पाने की लालसा सिर्फ जगाकर ही नही रह जाती है; वरन समय के गुजरते

गुजरते, दिन प्रतिदिन दम्पति के मन में प्रबल होती जाती
है। इससे भी और अधिक समय के गुजरते गुजरते,
मन की वह लालसा, प्रबल ही नहीं बल्कि बेचैनी में बदल
जाती है।

दम्पति की चिंतन तो अलग रही; इस चिंता में साथ
साथ परिवार के तथा वंश के लोगों की चिंता भी शामिल
होती जाती है। कि इस दम्पति को पुत्र की प्राप्ति में देरी
होने लगी है। फिर तो कहना ही क्या है। तरह तरह की
सिपारिशें होने लगती है। वैद्य, हकीम या अन्य चिकित्सकों
कि मदद लेनी पड़ती है। पूजा पाठ भी आरंभ होने लगते
हैं। तीर्थों की यात्र शुरु हो जाती है। मन्दिर में पुजा-
रियों का, और साधुओं, सन्यासियों का आशीर्वाद लेना
पड़ता है। अपने से सीधे ईश्वर से भी पुत्र की याचना
करनी पड़ती है।

इन सब कार्यों के पीछे बहुत से धन दौलत खर्च हो
आखिर पुत्र धन के मुकाबले और अन्य धनों की तुलना
ही क्या है? पुत्र की प्राप्ति जल्द हुई या कठिनाई के बाद
देर से हुई। आखिर पुत्र प्राप्त करने की भावना के पीछे
रहस्य क्या है? असली तथ्य क्या है?

मेरे समझ से, औरों के समझ से भी, हर समाज के
दम्पति के लिए; हर भिन्न धर्म के दम्पति के लिये सिर्फ
एक ही रहस्य है। वह यही, कि पुत्र होकर पुत्र हमारी
सेवा करें। पुत्र हमारे बुढ़ापे का, अन्त समय का सहारा

बने। दम्पति का निशान एक पुत्र धरती पर रह जाए। दो
आत्माओं के मिलन के फलस्वरूप एक आत्मा का सृजन
हो जाए। वंश चलता रहे।

यह भावना पुश्त दर पुश्त चलती रहती है। वंश के
हरेक उत्तराधिकारी के लिए, यह भावना, समान रूप से
प्रभावकारी है। और उसी तरह के प्रभावकारी तमन्नाओं
सिलसिला, कुल में, पीढ़ियों से चली आती है। और फिर
भविष्य में भी चलती रहेंगी। दाम्पत्य जीवन ही सह-जीवन
है। समान आनन्द का जीवन है। इस कारण दम्पति
बिना संतान के भी आनन्द के साथ सारा जीवन बिता
सकते थे।

फिर इस आनन्दमय जीवन के बीच यह खलल
क्यों? कि पुत्र के बिना दम्पति का आनन्दमय जीवन
बदल कर चिंतामय क्यों हो जाता है। और कुछ नही।
दुनियाँ का आनन्द नही। दुनियाँ कि सम्पति नही। इन
सब के एवज में पितृ प्रधान समाज के लिये दम्पति को एक
पुत्र और मातृ प्रधान समाज के लिए, दम्पति को एक [illegible]
हों चाहिए।

क्यों। मानिए या नही मानिए। केवल एक ही भावना
मन में समाया हुआ है, कि पुत्र या पुत्री, भविष्य में हमारी
सेवा करें। भगवान की कृपा से दम्पति को सन्तान लाभ
हुआ। और दम्पति के जीवन की खुशी में चार चाँद लग
गए। वंश के लोगों को और बाकी सारे कुटुम्ब को खुशी

हुई। अब जिंदगी मे खुशी ही खुशी है।

लेकिन दम्पति की लालसा पुत्र पाने तक ही सीमित नही रहती है। सन्तान के पालन पोषण का आनन्द तो है ही। उसके पढ़ाई लिखाई, और समाजिक शिक्षा की भी चिता है कि लड़का लायक बने। लड़का जदगी मे सफलीभूत हो।

इन इच्छाओं, इन चिताओं के पीछे, मन में, अभी भी, यही एक भावना, छिपी हुई है, कि लड़का लायक बन कर जिदगी में सफल होकर हमारी सेवा करें। हतें सुख मिले। दम्पति की उम्र बढ़ते बढ़ते, बुढ़ापा आते आते; उनकी यह ईच्छा, 'पुत्र हमारी सेवा करे.'' कभी घटती नही है। प्रबल ही होती जाती है।

और यह इच्छा, जीवित अवस्था में, अन्त समय तक मौजूद रहकर, फिर दम्पति के मृत्यू के बाद भी, उनके चित्त में, आत्मा में, रुह में, छाप (imprint) होकर बहुत काल तक कायम रहती है। माता पिता की यह ईच्छा "कि पुत्र हमारी सेवा करें" सब कोई नही जान सकते है। यह बहुत ही प्रबल अन्तर्भावना है।

परंतु अन्य साधारण जन नही जानकर भी प्रत्येक दम्पति के लिए, यह एक गंभीर रहस्य है। गंभीर तथ्य है। परम सत्य है। यही कारण है, मात्र यही कारण है कि जीवन के अन्मि क्षण में वृद्ध माता पिता, इस बात को

जानते हुए भी कि वह अपना पुत्र है, पुत्र के व्यवहार से असन्तुष्ठ होने पर, पुत्र को श्राप ही दे जाते हैं। और वंश के अन्य लोग तथा समाज के अन्य लोग भी, वैसे पुत्र का, यह कर निंदा करते है कि उसने माता पिता की सेवा नही की।

इसके विपरित पुत्र के सेवा से सन्तुष्ट माता पिता; अपमे पुत्र को आशीर्वाद ही दे जाते है। वैसे पुत्र का सभी प्रशंसा भी करते हैं।

असन्तुष्ट माता पिता का यह श्राप, और सन्तुष्ट माता पिता का वह आशर्वाद, देखने सुनने मे तो बहुत साधारण से लगते हैं, परन्तु अकाट्य है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि अकाट्य है।

जीवित अवस्था तक, में माता पिता की सेवा का उनके आशीर्वाद के रुप में जब एक सूफल है; तब मरणोपरान्त पित्तर लोक में, सूक्ष्म जीवन काल तक, अगर माता पिता की, भोजन अर्पण आदि दैनिक क्रियाओं, के द्वारा पूजा की जाए तो पुत्र के उस क्रिया के, उसके उस कर्म के सूफल की पराकाष्टा का अन्दाज लगाया जा सकता है। फिर कौन सा ऐसा माता पिता है, जो यह चाहता है कि पुत्र उनका पूजा नही करे।

संक्षिप्त में इसी सिद्धान्त के आधार पर ही इसी सत्य के आधार पर ही, कुल पूजा, (Ancetral Wership) का, कुल धर्म का परपरा, आदिवासियों मे, सरना आदि-

वासियों में चला आता है। प्रत्येक सरना आदिवासी परिवार में, पुस्त-दर-पुस्त, समाना होने के साथ किशोरों को इस पूजा का महत्व को समझाया जाता रहा है। और वंश का, कुल का, सिलसिला, अनुकरण करता चला रहा है। इसी कुल पूजा के कारण ही, कुल पुजारी आदिवासी परीवार, कोल कहे जाते है।

यह कोई रुढ़िवादी नही है। यह कोई अन्ध विश्वास नही है। वरन बहुत ही तर्क सगत प्रथा है। अनगिनत युगों से ईश्वर के दैविक कुल से, आदिवासी कुल में चला आ रही, पौराणिक से भी पौराणिक; अत्यन्त युक्ति सगत प्रथा है। पितृ आत्मा के साथ पुत्र आत्मा, मातृ आत्मा के साथ पुत्र आत्मा का; अटूट सबन्ध का पौराणिक प्रथा है।

कोल आदिवासियों ने, सृष्टि के आरभ से आज तक श्रुति, के सहारे इसे कायम रखा। इसे नही भुलाया और इसे आज तक नही खोया; यह कोल आदिवासियों के लिए कम गौरव की बात नही है। और खास कर भारत के लिए, जहां पर यह पौराणिक सस्कृति, छिपटे छिपते अभि तक, जस के तस बची रही। ससार के अन्य आधुनिक सस्कृतियों की पृष्ठ भूमि में कम गौरव की बात नही है। संसार के लोगों के लिए भी मानव जाति के साँस्कृतिक अवशेष के रूप में, यह कुल धर्म; कम गौरव की बात नही है। यह कुलाचार जीवन का एक अटल सत्य है। और एक अकाटय तथ्य है।

कुल के प्रत्येक पुत्र के साथ, परिवार के एक नये सदस्य के साथ; यह परंपरागत; पौराणिक, कुल धर्म, नया होता जाता है। क्योंकि यह कुल धर्म प्रत्यक पुत्र के लिए एक निजी कर्त्तव्य है; निजी सस्कार है। अपने कुल का निजी थाती है; जो उसके अपने निजी जीवन के लिये कुल परंपरा के लिए, अत्यन्त कल्याणकारी है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतः यह कुल धर्म, आदिवासियों के लिए तो कुछ कहना ही नही है, वरण सभी के लिए भी अनुकरणीय है।

सोचने की बात भी है। इस धरती पर; इस दृश्य लोक में, माता पिता ने पैदा किया, पाला पोसा और बड़ा किया। और उससे भी कही अधिक, उन्हों ने मार्ग दर्शन किया। वही माता पिता मरने के बाद भी, अदृश्य लोक में, सूक्ष्म शरीर में, वही माता पिता है। और वे बहुत काल तक सूक्ष्म शरीर में मौजूद रहते हैं। क्योंकि आत्मा अमर है।

वे तब तक गैर नही हो सकते हैं, जब तक पुत्र कुल धर्मी होकर उनके प्रति पूजा कायम रखते हैं। वे तब तक भटक भी नही सकते हैं, जब तक श्रद्धा भक्ति के साथ; माता पिता एव पूर्वजों के नाम पर, पुत्र का भोजन पानी आदि भोग अर्पण जारी रहता है। सिर्फ मन को सूक्ष्म भवन में उनकी याद को कायम रखने की आवश्यकता है।

अपने आत्मा की सूक्ष्म दृष्टि से उन्हें पहचानने की आवश्कता है।

जिन माता पिता ने, अपनी जीवित अवस्था में, पुत्र मार्ग दर्शन किया; और पुत्र के सेवा से सन्तुष्ठ होकर, पुत्र को यह आशीर्वाद दिया है, कि संसार में सफल हो, तो क्या वही माता पिता, मृत्यु के बाद. सूक्ष्म शरीर के अवस्था में पुत्र के द्वारा अनवरत श्रद्धा और स्नेह के साथ शुद्ध एवं पवित्र भोजन पानी आदि अन्य भोज्य वस्तुएं, जिंदगी भर अर्पण करते रहने पर, पहले से अधिक खुश नहीं रहेंगे। और खुश होकर पहले से भी कहीं अधिक आशीर्वाद सेवारत पुत्र को, पित्तर लोक से देव लोक से, या स्वर्ग से नहीं दे सकेंगे ?

मैं विश्वास दिलाता हूँ, कि ये खुश होकर, अन्य देवताओं के साथ, पुत्र को उसी घर में, अवश्य मार्ग दर्शन कर सकेंगे और पहले से भी कहीं अधिक आशीर्वाद पुत्र को निरन्तर दे सकेंगे।

जो माता पिता, जीवित अवस्था में, पुत्र से असंतुष्ट होने के कारण, पुत्र को श्राप दे गए हैं, उस श्राप को भी वे, अब वापस कर लेंगे। बशर्ते की पुत्र, अपनी गलती को महसूस करते हुए, कुलाचारी बनकर, दिवंगत आत्मा को कुलाचारी बिधियों से खुश करने की निरन्तर कोशिश करे। यह झूठ नहीं है।

इसके अलावे पुत्र को माँ के गोद का, बचपन का वह आनन्द अगर जिंदगी में बराबर बना रहे और दृश्य लोक से अदृश्य लोक तक याने इस लोक से परलोक तक, प्रसारित (extended) रहे तो; क्या-माँ के गोद का, यह आनन्दमय अनुभव, स्वर्ग लोक के आनन्दमय अनुभव से भी कहीं अधिक महसुस किया जा सकता है।

मेरे समझ से तो कभी नहीं।—ऐसे पुत्र को, जिन्होंने जीवित अवस्था में; माता पिता की सेवा की है। और उनके (माता पिता) मृत्यु के बाद, फिर पित्तर लोक में भी; उस सेवा को पूजा में बदल कर निरन्तर जारी रखा है; वैसे पुत्र को सभी देवी देवता भी आशीर्वाद देंगे; और यह कहेंगे कि अमुक पित्तरों के कुल में अमुक एक पुत्र पैदा हुआ है; जो कुलाचारी है; जो कुलधर्मी है; और इस तरह कुल का उजाला हैं। अब वैसे पुत्र के प्रति सबके मालिक ईश्वर भी क्यों नहीं खुश होंगे।

अब सृष्टि के शुरु होने के; उस दिन; उस वेला का ध्यान करें; जिस दिन जिस वेला में, ईश्वर के दैविक परिवार में प्रथम देव पुत्र और प्रथम देवी पुत्री; पैदा लिए होंगे। वे स्वर्ग में पैदा लिए हों या धरती पर पैदा लिए हों, दोनों ही हालतों में ये ईश्वर के कुल के प्रथम दैविक पुत्र पुत्री है। वे शिव-शक्ति रहे हों; या आदम-ईव रहे हों।

उन्होंने भी अपने जीवन काल में पूजा स्तुति किए होंगे तो किनका किए होंगे ?

अपने आत्मा की सूक्ष्म दृष्टि से उन्हें पहचानने की आवश्कता है।

जिन माता पिता ने, अपनी जीवित अवस्था में, पुत्र मार्ग दर्शन किया; और पुत्र के सेवा से सन्तुष्ठ होकर, पुत्र को यह आशीर्वाद दिया है, कि संसार में सफल हो, तो क्या वही माता पिता, मृत्यु के बाद. सूक्ष्म शरीर के अवस्था में पुत्र के द्वारा अनवरत श्रद्धा और स्नेह के साथ शुद्ध एवं पवित्र भोजन पानी आदि अन्य भोज्य वस्तुएं, जिंदगी भर अर्पण करते रहने पर, पहले से अधिक खुश नही रहेंगे। और खुश होकर पहले से भी कहीं अधिक आशीर्वाद सेवारत पुत्र को, पित्तर लोक से देव लोक से, या स्वर्ग से नही दे सकेंगे ?

मैं विश्वास दिलाता हूँ, कि ये खुश होकर, अन्य देवताओं के साथ, पुत्र को उसी घर में, अवश्य मार्ग दर्शन कर सकेंगे और पहले से भी कहीं अधिक आशीर्वाद पुत्र को निरन्तर दे सकेंगे।

जो माता पिता, जीवित अवस्था में, पुत्र से असंतुष्ट होने के कारण, पुत्र को श्राप दे गए हैं, उस श्राप को भी, वे, अब वापस कर लेंगे। बशर्ते की पुत्र, अपनी गलती को महसूस करते हुए कुलाचारी बनकर, दिवगत आत्मा को कुलाचारी विधियों से खुश करने की निरन्तर कोशिश करे। यह झूठ नही है।

इसके अलावे पुत्र को माँ के गोद का, बचपन का वह आनन्द अगर जिंदगी में बराबर बना रहे और दृश्य लोक से अदृश्य लोक तक याने इस लोक से परलोक तक, प्रसारित (extended) रहे तो; क्या–माँ के गोद का, यह आनन्दमय अनुभव, स्वर्ग लोक के आनन्दमय अनुभव से भी कही अधिक महसुस किया जा सकता है।

मेरे समझ से तो कभी नही।—ऐसे पुत्र को, जिन्होंने जीवित अवस्था में; माता पिता की सेवा की है। और उनके (माता पिता) मृत्यु के बाद, फिर पित्तर लोक में भी; उस सेवा को पूजा में बदल कर निरन्तर जारी रखा है; वैसे पुत्र को सभी देवी देवता भी आशीर्वाद देंगे; और यह कहेंगे कि अमुक पित्तरों के कुल में अमुक एक पुत्र पैदा हुआ है; जो कुलाचारी है; जो कुलधर्मी है; और इस तरह कुल का उजाला है। अब वैसे पुत्र के प्रति सबक मालिक ईश्वर भी क्यों नही खुश होंगे।

अब सृष्टि के सुरु होने के; उस दिन; उस वेला का ध्यान करें; जिस दिन जिस वेला में, ईश्वर के दैविक परिवार से प्रथम देव पुत्र और प्रथम देवी पुत्री; पैदा लिए होंगे। वे स्वर्ग में पैदा लिए हों या धरती पर पैदा लिए हों, दोनों ही हालतों में ये ईश्वर के कुल के प्रथम दैविक पुत्र पुत्री है। वे शिव-शक्ति रहे हों; या आदम-ईव रहे हों।

उन्हों ने भी अपने जीवन काल में पूजा स्तुति किए होंगे तो किनका किए होंगे ?

उस समय सृष्टि के आदि में; उनके सृष्टि कर्त्ता, पालन कर्त्ता, परम पिता ईश्वर एवं परम माता ईश्वरी को छोड़कर, और अन्य कौन रहे होंगे? जाहिर है कि उन्हों ने ईश्वरी एवं ईश्वर की ही पूजा स्तुति किए होंगे।

उन दोनों से याने ईश्वर के प्रथम पुत्र-पुत्री के बाद उससे जो भी पैदा हुए होंगे, वे ईश्वर के दैविक पोता पोती ही पैदा हुए होंगे। और वे भी अपने जीवन काल में, अपने दैविक माता पिता सहित दैविक दादा; दादी, परम ईश्वर-ईश्वरी का ही पूजा स्तुति किए होंगे। और दैविक कुल में ईश्वर के दैविकुल में यही क्रम चलता ही रहा होगा। इससे भिम्न स्थिती को तो सभावना नही है। और इससे भिन्न स्थिति तर्क संगत भी नही है।

सर्वत्रथम जिस शक्ति के द्वारा सृष्टि का श्रीगणेश हुआ, वही शक्ति, कुल का प्रथम प्रवर्त्तक शक्ति है। और वही शक्ति उस कुल का अग्रदूत शक्ति है। उनसे उत्पन्न उनके कुल के देवता, या आदमी उस कुल के लिए, कुलेश्वर (कुल+ईश्वर हुए। उनसे उत्पन्न पुत्र कुलेश्वर शक्ति की पूजा अगर नही किए होंगे तो किनका किए होंगे?

अतः कुल पूजा का आरम; पित्तरों की पूजा का आरंभ, यहीं, खुद ईश्वर से ही अगर आरंभ नही हुआ, तो कह से हुआ? कुलाचारी की, कुलधर्म की यही तर्क संगत स्थिति है। यही तर्क संगत आधार है। और इसी

कुलाचार के द्वारा ही माता पिता के इस अमिट आंतरिक ईच्छा (पुत्र हमारी सेवा करे) की पूर्ति हो सकती है। और इसी कुलाचार के द्वारा ही पुत्र भी माता पिता के ऋण से उऋण हो सकते हैं। और अन्य आचारों के द्वारा तो एकदम ही नही।

"न कुल कुलं इति भाई, कुलं ब्रह्म सनातनम्"
कुल का मतलब परिवारिक मर्यादा ही नही बल्कि कुल से मतलब सनातन ब्रह्म भी है

झलक

इस धरती पर भिम्न धर्मों के कितने ही प्रवतक आए और चले गए। कितने ही भिम्न धर्मों के ठीकेदार; आदमी के चरवाह आए और चले गए। किन्तु हर व्यक्ति को, हर दम्पति को, पुत्र पाने की चिंता जितनी मन में रही है, उतनी चिंता शायद नामकृत भिम्न धर्मों की नही रही है। कुल को कायम रखने, परिवार को कायम रखने की चिंता के मुकाबले में शायद स्वर्ग की भी चिंता नही रही है।

क्योंकि वैसे व्याकुल दम्पतियों को, नामकृत भिन्न धर्मों के प्रभाव में रहते हुए भी कुल योगी का शरण लेते मैंने सुना है, दीखा भी है। हटिया, रांची की कुल योगिन का आशीर्वाद पाने के लिए कितने ही भिम्न धर्मों के दम्पति पहुँचते हैं। अपने प्रिय जनों को, अपने आँखों से औझल (मरने) से बचाने के लिए, आप कोई कसर नही उठा

रखते है। वैसा होना भी चाहिए।

किन्तु ओमल होने के थोड़े दिनों के बाद ही, उनका जायजा, खोज खबर कभी नही लेते हैं। ओमल होने के बाद भी लगातार, जिंदगी भर, उनका खोज खबर लेने में अगर कसर नही होने देते. तो अधिक संभव होता, कि वे देव लोक से आवके कुल में पुनः अवतरित होते। पुनः जन्म लेते। कुलाचार में यह असंभव नही है।

कुलेश्वरी

—— :•(:——

इस सृष्टि में, माँ के बिना जी, कुछ भी संभव नही है।
बच्चा का प्रथम शब्द भी माँ के अलावे अन्य नही है॥
तो क्यों नही उस बच्चा का अन्तिम शब्द भी माँ ही हो।
और क्यों नही व्यक्ति के जिंदगी का वैसा ही लक्ष्य हो॥
अमृत तुल्य माँ का दूध, जीवन भर मिले व्यक्ति को।
इससे उत्तम तमन्ना क्या हो, जिंदगी में व्यक्ति को॥
माँ का गोद मिले तो तूझको पिता का क्या प्रयोजन।
माँ की पूजा मन में है तो भिन्न धर्मों का क्या प्रयोजन॥

"गर्भ धारणः पोष्पाभ्यम, मात पितुः गरीयसी।
जननी जन्म भूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी॥

कुलेश्वर

परम पिता, मात्र सहायक हैं,
दिव्य माँ का; वृहद् ब्रह्माण्ड के धारण में।
प्राकृत पिता, मात्र सहायक ह,
प्राकृत माँ का क्षुद्र ब्रह्माण्ड के धारण के धारण में॥१॥
मेरे प्यारे, पिता के बिना भी,
एक पुत्र का होना संभव है माँ के तन से।
मेरी प्यारी माँ के बिना तो,
पुत्र का होना संभव नही है, पिता के तन से॥२॥
मैंने जाना मुनि जनों के समाधि से,
और मैं भी कहूँ योगियों के ध्यान से।
दिव्य माँ आशीन है सिंहासन पर,
जो जड़ित अनगिनत रत्नों से॥३॥
परम पिता स्तुति करते है माँ का,
जमीन पर सामने जोड़े करों से।
और क्या मैं अधिक बताउँ तुझे,
आनन्द विभोर मतवाला मन से॥४॥
प्रथम ज्ञान खुद से हासिल कर लो,
परमात्मा का एकाग्र चित्त से॥५॥
तब तुलना करो भिन्न धर्मों को,
ज्ञान पाकर ज्ञान के असली श्रोत से॥६॥

"पिता स्वर्ग पिता धर्म; पितारी परमम् तपः।
पितारी प्रितम आपन्ने प्रियन्ति सर्व देवता॥"

झलक

ः०ः

समय परिवर्तनशील है। समय के साथ संसार के सब कुछ बदल जाते हैं। कितने सम्पन्न परिवार छिन्न भिन्न हो जाते हैं। कितने ही आलीशान महल ध्वंस्त हो जाते है। महल उठता है फिर गिरता है। लोग जन्मते है, फिर गायब हो जाते हैं।

कौन दोस्त है, कौन दुश्मन है, कोई किसी का नही है। सब एक के बाद एक चले जाते है। जो आज दिन में आपके प्रिय थे; वही रात में चले गये। मूर्द घाट में सुन्दर शरीर जलकर राख हो गया। कब्रगाह में दफनाया गया। सबंध विच्छेद हो गया। अब वे अपना प्रिय नही रहे।

और वे धीरे धीरे कुछ ही दिनों के अन्दर; अनजान होते गए, अनजान होते गए, और स्मृति से ऐसा गायब हो गए; कि मानो वे अपना प्रिय कभी थे ही नही।

इस स्थिति का ध्यान करें। क्या—किसी का आँसू नहीं गिर सकता है?

ः०ः

ज्ञान प्रकाश

आदिवासियों :—

अपने कुल म आप प्रगट होते हैं। कुछ सलों तक अपने कुल में प्रगट रहने के बाद; फिर विलीन हो जाते है। किस अथाह अन्धकार में आप प्रवेश करते हैं?

क्या इसका भी आपने अन्दाज कर लिया है? नही किया है, तो तुरत ही अभि अन्दाज कर लीजिए। क्योंकि मौका बहुत तेजी के साथ हाथ से निकला जा रहा है।

आप कभी कुलाचारी नही बने। आपने कभी पत्नी को अपने बच्चों को; कुलाचारी बनने का पाठ नही पढ़ाया। तो निश्चय ही आपने घातक भूल की हैं।

अब समय आपका आ पहुँचा है। यमराज के दूत निकट आ चूके है। अब आप को जाना ही है। अपने कुल से, और इस तरह संसार से, सदा के लिए विदा होना ही हैं।

आपकी प्यारी सुन्दर पत्नी का संग छूटने वाला है। अपने वन प्यारे, हँस मुख बच्चों के नजर से आप ओझल हो जाने वाले हैं। और जाना ही है। उनको अपने साथ ले चलने का कोई उपाय भी नही है।

पत्नी स्वादिष्ठ भोजन बनाकर, प्रेम पूर्वक, आपको

पहले ही, खिलाती थी। और तब अपने खाती थी। उनसे विदा होने के बाद, कौन आपको दाना पानी देगा ?

अपना बंगला नुमा घर जो, अभी है, वह तो छूटा जा रहा है। विदा होने के बाद, फिर ठहरने का ठिकाना कहाँ होगा !

पडित, पादरी, और मौलवी कहते हैं कि मरने के बाद वे दिवंगत को स्वर्ग पहुँचाते है। लेकिन वे तो यही रह जाते है। वे कैसे आप को वहाँ पहुँचा देंगे ?

उनके कहने के मुताबिक, फिर, अगर यह भी मान लिया जाए, कि मरने के बाद लोग स्वर्ग जाते है। तो यह बहुत ठीक है। लेकिन जीवित अवस्था में तो, आपने जाना ही नही कि स्वर्ग किस दिशा में है ? कहाँ पर स्थित है ?

अब आपने स्वर्ग को खुद से जाना ही नही, खुद से पहचाना ही नही है, तो मृत्यु के बाद कैसे पहुचगे ? इसका क्या भरोसा होगा, कि जहाँ आप पहुंचेगे वही स्वर्ग है ! ऐसी अनिश्चितता की हालत में आपको भटकना ही है। और बिलकुल दिशाहीन, शुभ चित्तकों रहीत, उसी तरह आपको जाना है, जैसे कि :—

पत्ता टूटा डाली से हवा लेइ उड़ाय
अब के बिछुड़े कब मिलेंगे" ? ?
आप टूटे कुल से दिशा हीन मडराय
कुल में अब फिर कैसे आयेंगे ? ?

कितनी घबराहट की बात है। सोच सोच कर मन कांप उठता है शरीर सिहर उठता है। बुद्धि काम नही करने लगती है। नही, नहीं, इतना नही घबराईये, घबराने की बात जरुर हैं। पर जरा हृदय को थामिए। जरा मेरे तरफ भी ताकिए और ध्यान लगाकर सोचिए——

मेरे ज्ञान से तो; इस समस्या का एक समाधान है। आप मरकर निश्चय ही अपने निज जनों से ओझल हो जाए गे। केवल आपका स्थूल शरीर ही ओझल हो जाएगा किन्तु आप सूक्ष्म शरीर में, वृहद् ब्रह्माण्ड में बिचरते ही रहेंगे। और बहुत काल तक इसी तरह चित्त के रुप में विचरते ही रहेंगे। और बहुत काल तक इसी तरह चित्त के रुप में विचरते रहेंगे, जब तक कर्म के मुताबिक कई छोटे दर्जे के शरीरों को धारण करते हुए, स्वच्छ होकर ईश्वर तत्व में पूर्णतया नही घुल मिल जाते हैं। अत; आपके आत्मा का आपके चित्त का असली मृत्यु, उस तरह स्वच्छ होने के बाद; ईश्वर तत्व में घुल मिल जाने पर, ४,३२,०००,०० साल पर होगा। ऋषि मुनियों के द्वारा आत्मा की मृत्यु असली मृत्यु का यही उम्र निश्चत है।

तब तक आप को दाना पानी कौन देगा ? तब तक आपका ठिकाना कहाँ रहेगा ? सोचने की बात जरुर है। घबड़ाने की बात जरुर है।

पर विश्वास मानिये, इन समस्याओं का समाधान आपके परपरा में है। निश्चत रुप से है। जिसे आपने

बहुत हल्का समझ कर और वर्तमान सरल सामाजिक ढाँचे में बहक कर छोड़ दिया है। किनारे कर दिया है।

और जिसे आपने; बहकावे में आकर, ढोंगी धर्म गुरु के भुलावे में आकर कुछ सालों पहले; छोड़ा है। और इस तरह, अपने को, तथा अपने वंश को बिगाड़ा है। उस घोर समस्या का समाधान निश्चित रुप से कुलधर्म में है। कुलाचार में है।

पिता के प्रति पुत्र का दायित्व, पति के प्रति पत्नी का दायित्व; फिर उसी तरह पुत्र के, पत्री के प्रति पिता का दायित्व, पत्नी के प्रति पति का दायित्व, और इससे थोड़ा आगे बहू का सास ससूर के प्रति दायित्व, सन्क्षिप्त में परिवार के सदस्यों का एक दूसरे के प्रति दायित्व को, सपरिवार के कर्त्ता होने की हैसियत से समझिए, और फिर सब को समझाने का कोशिश कीजिए।

समझकर ऐसा इन्तजाम कीजिए कि, आपका उत्तराधिकारी आपके घर में ही, आपके रसोई में ही, आपके आत्मा का, पित्तरों, देवों, ईश्वर-पुत्र, एवं ईश्वर के संग आह्वान करे। उनका अपने से पूजा स्तुति करें। उनको अपने से अपने ही घर में; अपने ही रसोई का भोग दिया करें। ठीक उसी तरह, जैसा एक पंडित के द्वारा केवल देवों को, या ईश्वर को, मंदिर में पूजा स्तुति करते देखे है। या पादरी को गिरजा घर में ईश्वर-पुत्र को आह्वान कर पूजा स्तुति करते देखे है।

आपके आत्मा का, आपके ही घर के पूर्वज आत्माओं के साथ, आपके ही घर में, आपके पुत्र पुत्रियाँ एवं पत्नि आदि उत्तराधिकारी निज जनों के द्वारा, आह्वान कर, भोजन आदि सामग्रियों का अर्पण करते हुए, पूजा होने का गुंजाईश हैं।

पर अन्यत्र, किसी के द्वारा, आपके आत्मा के लिए पूजा अर्पण का तो बात ही छोड़ दीजिए, आपके बारे में खोज खबर करने का गुंजाईश ही नही है। इस तरह आपके वारिशदारों से आपका इस लोक में और पूर्वजों के आत्माओं के साथ, परलोक में सम्पर्क टूटने का गुंजाईश नहीं है।

कुलाचार को बिल्कुल निष्ठा के साथ जब निभा सकें तब, उसके बाद सिर्फ दो ही सम्भावनाएं है। जब कभी फिर से जन्म लेने का अगर है तो, आपकी आत्मा अपने ही कुल में अवतरीत होंगे। और अगर मोक्ष को प्राप्त होंगे तो अपने ही कुल के मोक्ष प्राप्त पित्तर देवों में शामिल होंगे। और अंतिम में फिर उसी तरह ईश्वर तत्व में शामिल होंगे, जिस तरह अंगुली के नोक पर, दूध का एक बून्द कटोरी भर दूध में गिर कर शामिल हो जाता हैं।

आप पित्तर लोक, देव लोक, या स्वर्ग लोक में ही क्यों न हों, ईश्वर तत्व में ही घुल मिल जाने के लक्ष्य की प्राप्ति में भी आपके कुल के ही अग्रदूत पित्तर ही मार्ग दर्शन करेंगे।

लेकिन अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति के बाद भी आप, अपने कुल से विच्छेद नही नही होंगे। क्यों कि ईश्वर ही तो आपके कुल के अलावे सभी कुलों के अधिष्ठात्री पित्तर हैं। अतः अपने कुल के अलावे सभी कुलों में पज्य होने के स्तर को ही प्राप्त कर जाते हैं। कुलाचार में; कुलधर्म, में यही तो खासियत हैं। जो अन्य आचारों मे नही है।

—:०(:—

संसार के अन्य धर्मों के मुकाबले, इस कुलाचार का इस कुलधर्म का, कभीं विभाजन नही हुआ। और न भविष्य में कभी हो सकता है। क्योंकि इसके प्रर्वतक खूद कुलश्वर हैं। और पुत्र अनुयायी; कुलेश्वर के द्वारा ही संचालित, कुल का नवीनतम उत्तराधिकारी है।

हर कुल के कुलाचारी पुत्र के, अपने प्रयास का अपनी उपलब्धि, अपने पास है गुप्त रुप से अपने पास है और इसी उपलब्धि के आधार पर स्वर्ग के दरवाजे का कुंजी भी अपने पास है। पंडित, पादरी या मौलवी के पास स्वर्ग की कुंजी थाती नही रखी हुई है।

स्वर्ग या नरक, यही दो ठिकाने, हर किसी के लिए बतलाए गए हैं। किसी एक ठिकाना पर या एक के बाद एक, दोनों ही ठिकानों पर पहुँचने की काबिलियत आपमें है। दोनों दरवाजों की कुन्जी आप के पास है।

बताईये तो, कहाँ कोई गुंजाईश है धर्म के नाम पर बड़ा छोटा दिखाने का? कहां कोई गुंजाईश है अलग गुट बनाने का? कहां कोई गुंजाईश है, भिन्न पोषाकों के द्वारा भिन्नता लाने का? कहाँ कोई गुंजाईश है, रीतियों मे भिन्ता लाने का? या अन्य प्रकार से भिन्ता लाने का? जब भिन्नता का गुंजाईश ही नही है, तो ईश्वर के धाम का तीर्थ यात्री, को भी, रास्ते में ही झगड़ने का गुंजाईश कहाँ है?

अतएव आदिवासियों,—कुल पुत्रों; कुल पुत्रियों— कुलाचारी कुलों के साथ, कुलाचारियों के साथ, मिल कुल कर ही रह सकते हो, एक दूसरे के तरफ आपसी झुकाव के द्वारा ही रह सकते हो, और अन्य तरीके से नही रह सकते हो।

मुख्य त्योहारों के दिन, मुख्य पुजारी, दियुरी या पाहन, के पूजा में; एकत्र होकर ही और उनसे सम्बद्ध होकर ही रह सकते और अन्य तरीके से नही रह सकते हो। अपने पौराणिक परंपरा में ही बने रहे सकते हो। चाहे आप कितना ही अधिक पढ़े लिखे हों, कितना ही उंचा पद को सुशोभित करते हों, अपने परंपरा में ही बने रह सकते हो। अन्यत्र सुख शांति की गुंजाईश कहाँ?

—):०:(—

संसार में कुलाचारी से बढ़कर कोई उत्तम धर्म नहीं है। उससे बढ़कर कोई उत्तम प्रकाश नहीं है। सूर्य, चन्द्रमा और तारे गण जब धरती पर अपना प्रकास बिखेरते है। तब उसी प्रकाश में आप, अपने कुल के सदस्यों को पहचानते हैं। आपही के कुल के जो सदस्य, धरती पर के उन प्रकाशों से ओझल हो चुके हैं। उन्हें आप किस प्रकाश में पहचानेंगे।

और कोई प्रकाश नहीं है। कुल धर्म का ही एकमात्र प्रकाश है। जो अपनी रोशनी, आसमान में पित्तर लोक में देव लोक में, स्वर्ग लोक में, और सभी लोकों में बिखेरते हैं। इसी प्रकाश का सहारा लेकर; आप ओझल हुए अपने कुल के निज जनों को; पहचान सकेंगे।

कुल धर्म के ज्ञानी, अपने कुल के ज्ञान प्रकाश में ही, अपन कुल से ओझल सदस्यों को पहचान कर, सेवा कर सकेंगे।

वह कुल धर्म कितना आनन्दित है, जो सूर्य, चन्द्रमा और तारों के प्रकाश में अपने घर में अपने कुल के सदस्यों को स्थूल रुपों में, पहचानते ही है, पर कुल से ओझल निज जनों को सूक्ष्म रुपों में, घर से बाहर एवं घर के भीतर, कुल धर्म के ज्ञान रुपी प्रकाश में ही पहचान लेते हैं। जो अन्यों को दुर्लभ है।

पश्चिमी सभ्यता में पनपे, पश्चिमी धर्म के ज्ञान से

तो दिन के उजाले में भी; पुत्र के द्वारा माता पिता को पहचानना कठिन है। इस लोक में जब यह पहचाना कठिन है तो परलोक मे पहचानने का वो बात ही अलग है। यही कारण है कि कभी कभी पुत्र का अपनीयाँ के साथ ही स० रा० अमेरिका में प्रेम विवाह सम्पन्न हुआ है।

आपको ऐसी अन्धकार में रहने के लिए कभी भी तत्पर नहीं होना चाहिए। वैस आचार, वैसा धर्म आपके कुल के लिए विनाशकारी है। कुल का नाश हो जाए तो अपन ही पूर्ण बिनाश है।

झलक

किसी के ओझल होने (मरने) के बाद; वेद की ऋचाओं का पाठ करना; मंत्रों का जाप करना, विशेष प्राथना और उन क्रियाओं से यह आशा करना, कि दिवगत आत्मा को शांति मिलेगी सहज खोखला सान्त्वना है। इन क्रियाओं का असर अत्मा पर होते संसार में नहीं जाना गया है। जिन्दगी में जिसने जैसा किया है; उनके कर्मों के मुताबिक; उनके आत्मा पर पाप और पूण्य का छाप पड़ चुका होता है।

मृत्यु के बाद; जिन्दगी के बुरे कार्यों के छाप को भिन्न धर्मों के ठेकेदार ऋचाओं; मन्त्रों; कल्माओं; को पढ़कर और विशेष प्रार्थना कर: दिवंगत के अत्मा पर

से मिटा देंगे; यह सम्भव नही मालुम पड़ता है। वैसा सम्भव होने लगे तो फिर दिन्दगी में धर्म का नाम रटने का ही क्या जरुरत हैं ? और फिर ईश्वर से भी डरने का का क्या जरुरत है ? और फिर भिन्न धर्मों के तगमाओं द्वारा भी अपने को संसार में पहचानवाने का क्या जरुरत है !

भोग और योग

जहाँ योग है; वहाँ भोग नही। और जहाँ भोग है वहां योग कहां ? इसी तरह की बात अन्य धर्मावलम्बी लोग सिखाते हैं।

यही कारण है; शायद यही एक मात्र कारण है; कि जिससे; कि बहुत से सन्यासी कहलाने वाले; बहुत से साधु और सन्त कहलाने वाले नर शादी नहीं करते हैं। और कुछ भिन्न धर्मों के तो नारी भी शादी नहीं करती है।

वैसे नर नारी सांसारिक मोह माया से विरक्त होने का तो दावा करते हैं, परन्तु अन्दरुनी बात कुछ दूसरा ही मालूम पड़ता हैं। उनमें से कोई भी बचपन से अछूता निरा-बाल ब्रह्मचर्य है, ऐसा नहीं मालूम पड़ता हैं। क्योंकि अगर वैसा कोई होता तो उसकी प्रतिभा छिपी नहीं रह सकती है। आदमियों से तो क्या, देवताओं से भी छिपी नहीं रह सकती है। यह मूल्यांकन गलत नहीं है।

असलियत में वे भिन्न धर्म के नामपर भिन्न धार्मिक संस्थाओं से सम्बन्धित होते हैं। एक प्रकार से संस्था के प्रबन्धक मण्डल के सदस्य होते हैं और संस्था में प्रभावशाली स्थान रखते हैं।

अतः ये पूर्णरूपेण विरक्त सन्यासी, या पूर्णरूपेण विरक्त संत नहीं कहे जा सकते हैं। केवल पोषाक मात्र सर्व साधारण से भिन्न है। इसी कारण वे ठीक वैसा ही हैं जैसे भेड़ की खाल में भेड़िया है।

ये देखने सुनने में तो शादी नहीं करते हैं। परन्तु इनकी अपने तरह की अजीब शादी होती है। ये रात के अन्धेरे में चोरी छिपे घन्टे दो घन्टे का अस्थायी प्रेम विवाह करते हैं। ये प्रकृति के दबाव को रोक नहीं सकते हैं। ऐसा कहा जाए कि ये संयमी (Self possessed) नहीं है। असली में कहा जाए तो भीतर से ये व्यभिचारी (Undeclared enjoyers) है। इतना ही नहीं ये Sex holiday के सदस्य है और अप्रत्यक्ष रुप से Sex holiday करते हैं। परन्तु अफसोस की बात यही होती है कि दुनियां की नजरों में प्रत्यक्ष हो ही जाता है। कितना कड़ा-कड़ी धोखा वे खुद अपने को, समाज को और ईश्वर को देते हैं ?

अतः ये न तो अपने कुल (Geneology) के हुए और न वे ईश्वर के कुल (Divine Geneology) के ही हुए। इसलिए यह कहा जा सकता है कि ये आदमी है तो आदमी; किन्तु ये Traceless Spirit के आदमी हैं।

बताईये, ऐसे आदमी अपना ढोंगी परिचय अगर नहीं देंगे तो क्या देंगे ?

असली सन्यासी, असली सन्त विरानों में ही पाये जाते हैं बीहड़ जंगलों में ही पाये जाते हैं। ठीक उसी तरह जैसे कि समुद्र की गहराईयों में मोती पाये जाते हैं। मोती तुल्य वैसे सन्यासी, वैसे सन्त के केवल एक कुटिया मात्र होता है। उनके दर्शन से दर्शक ठीक उसी तरह प्रकाशित हो जाते हैं, जैसे वर्षात के बिजली की चमक से पृथ्वी प्रकाशित हो जाती है।

ऐसे सन्यासी, ऐसे सन्त के लिए भोग बिल्कुल नहीं है। उनके लिए केवल भोग ही योग है। ये अपने आत्मा में ही तुष्ट है और अपने आत्मा में ही रमते हैं और इस तरह आत्माओं के आत्मा – परमात्मा में ही लीन रहते हैं।

ये संस्था का प्रबन्धक होना तो क्या, मन्त्रियों के पास तक नहीं जाते हैं और राजा के दरबार तक में भी नहीं पहुँचते हैं। उनके तपस्या से अर्जित उन्हीं में निहित शक्ति अत्यन्त प्रभावशाली होता है। जिससे संसार को कल्याण होता है। उन दो तरह के सन्यासियों और सन्तों के अतिरिक्त वे कुल धर्म के कुलयोगी हैं।

कुल धर्म में योग भी है और भोग भी है। भोग के साथ ही योग है योग के साथ ही भोग भी है। कुलधर्म में सृष्टि कर्त्ता ईश्वर के इच्छा ज्ञान और किया का ही अनुकरण होता है और इस तरह कुलयोगी ईश्वर की सृष्टि में यथोचित योगदान करता है।

अतः कुलयोगी, ईश्वर के दैविक कुल से लेकर अपने लौकिक कुल तक का ज्ञानी होता है। इस कारण कुलयोगी को कुलज्ञ (कुल के ज्ञानी) भी कहा जाता है। और इसतरह कुल योगी, सृजन कार्य के आनन्द में सृष्टिकर्त्ता के साथ शामिल होते हैं और इस योगदान में वे लौकिक एवं परलौकिक, पिता के प्रति कुलयोगी पुत्र के दायित्व को निभाते हैं ईश्वरीय दैविक कुल से लेकर कुलयोगी तक के कुल के साथ आदमी और देवता एक साथ रह सकते हैं और रसोई में ही खा भी सकते हैं।

मेरा क्या हस्ती है। दैविक संकेतों के आधार पर मैंने भिन्न धर्मों के साथ कुल धर्म को सिर्फ तर्क की कसौटी में परखने का कोशिश किया है। मेरे समझ से तो कुल धर्म बिलकुल खरा उतरा है। नहीं तो ऐसी अद्भुत बातों को सुन कर आप अवश्य ही मेरी हँसी उड़ाते। पर उप-निषद भी कहते हैं कि —

"भोगेन योगम आप्नोति, भोगेन कुल साधनम।
तस्मात यत्नात् योग युक्तो, भवेत वीरवर शुद्धिः।

(कुलार्णव संहिता)

"यत्रास्ति भोग बाहुल्यम, तत्र योगस्यम का कथा।
योगेपि भोग बिरहाः कौलस्तु मयः अस्नुते॥

(कुलार्णव तन्त्र)

अतः कुलधर्म के द्वारा भोग के साथ ही योग भी है। यह कुलेश्वर का एक कुल साधना है और यत्न से पवित्रता को कायम रखते हुए कुल धर्म का पालन करने पर जीवित अवस्था में ही मोक्ष की प्राप्ति भी होती है।

कठिन से कठिन काम भी सहज हो जाता है क्योंकि देवताओं की अदृश्य मदद साक्षात मदद साक्षात मिलती है दुष्ट आदमी के द्वारा छिपाई हुई गुप्त से गुप्त बात भी प्रगट हो जाती है। क्योंकि देवता उस बात को प्रगट कर देते हैं।

घर में चोरी नहीं हो सकती है डकैत नहीं हो सकते हैं क्योंकि अगर चोरी डकैती हो भी जाए और तो चोर और डकैत कहीं दूर भाग कर भी जिन्दा नहीं रह सकते हैं।

पति और पत्नी दोनों ही कुलधर्म के पालन में एक समान सक्षम है। कुलाचार में विभेद नहीं है। ऐसा नहीं है कि ब्राह्मण पूजा करने के सक्षम हैं और ब्राह्मणी पूजा करने के सक्षम नहीं हैं।

प्रत्येक बृहस्पतिवार को या प्रत्येक रविवार को प्रत्येक कुलाचारी गृहिणी को खुद से प्रथम तो लीप पोतकर के फर्श की सफाई और फिर आँगन की सफाई करना चाहिए। उसके बाद पूरे वस्त्रों की सफाई करना चाहिए। नहा धोकर अपनी सफाई करना चाहिए और आखिर में रसोई कोठरी की सफाई करना चाहिए। भण्डार कोठरी (बाबा ओवाः)

की सफाई करना चाहिए। घर के अन्दर; रसोई के अन्दर भण्डार के अन्दर के हवा की सफाई के लिए अगरबत्ती जला देना चाहिए। ऐसे वातावरण में गृहिणी को रसोई बनाकर प्रथम पित्तरों को, देवों को और सभी के कुलेश्वर को रसोई का भोग अर्पण करना चाहिए और तब परिवार के सदस्यों को, अर्पण से बचा भोजन खिलाना चाहिए और तब अपने भी खाना चाहिए।

पवित्र रहन-सहन ही कुलधर्म का आधार है। पवित्र रसोई, पवित्र बरुणी (Rice-bear) का भोग पित्तरों; देवों और कुलेश्वरी को बहुत प्रिय है। पवित्र रहन-सहन के साथ तैयार की हुई ये सामग्रियां प्रतिदिन सुबह-शाम गृहिणी के द्वारा अगर अर्पण की जाए तो अति उत्तम है।

परिवार के कर्त्ता के हैसियत से पति को भी शुद्ध आचरण कायम रखना चाहिए। कुलधर्म में शुद्ध आचरण वाले कुलयोगी के पूजा का असर यह होता है कि आज पूजा कीजिए और आज ही फल देख लीजिए।

तीर्थ यात्रा करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि अपना घर ही तो एक धाम है। जहाँ पूरी पवित्रता कायम है और जिसका खुद आपको मालूम है। तीर्थ स्थानों में कौन पवित्रता और भक्ती ही पवित्रता को कायम रखता होगा? फिर कोई कहे भी तो कैसे विश्वास किया जाए?

अतः औरों की तरह अन्य भिन्न धर्मावलम्बियों की तरह तीर्थ यात्रा करने का कोई जरूरत नहीं है। फिर

आपके हरेक गाँव के कोने में तो सीमाने पर एक छोटा कैलाश (देशाउली) है। दियुरी पाहन के आह्वान करने पर त्योहारों के अलावे हर सार्वजनिक दैविक कार्यों में, बड़े कैलाश के मालिक अपने पूरे दैविक कुल के देव सदस्यों के साथ उसी छोटा कैलाश में चले आते हैं।

अतः वही स्थान कैलाश हो जाता है; जहां कुल धर्मी, कोल पूजा के लिए इकट्ठा होते हैं। तो फिर तीर्थ की क्या जरुरत है ? भिन्न धर्मों के, भिन्न सिधान्तों मे बहकने जरुरत नही है। हां अगर आप भिन्न सिद्धान्तों को किसी से जान जाएँ तो उसे परीक्षा करके देखिए। बिना परीक्षा के स्वीकार मत कीजिए। पर यह सोचने की बात है :—

कि ईश्वर या कुलेश्वरी के सारे दैविक कुल के साथ ही जब आपका कुल है तो इतने बड़, इतने विशाल, लौकिक एवं परलौकिक कुल के अन्दर कौन छुटे होंगे ? ईश्वर सहित, ईश्वर पैगम्बर, ईश्वर के पुत्र, ईश्वर के अवतारी और सारे देवी देवताएँ पित्तरी आदि सभी तो कुल में सम्मिलित है तो कुल धर्म के सिद्धान्त अलावे उनके लिए कौन अलग सिद्धान्त हो सकता हैं ? जैसा हाथी के पैर छाप पड़ने से सभी जानवरों के पैर का छाप छिप जाते हैं, उसी तरह कुल धर्म के सिधान्तों अपनाने से संसार के सभी भिन्न धर्मों के सिधान्त छिप जाते हैं। समा जाते हैं।

अब आदिवासियो मुझे बताईये कौन सा सही है, और कौन सा गलत है ? सोचिए और बताईये।

अतः कुल धर्म का रक्षा कीजिए; इसमें आपका और अपने कुल का भी सुरक्षा है।

एक सवाल

—):0:(—

ऐसे ही एक आपको, शान्त वातावरण में, और अकेले में एक सज्जन ने मुझ से कहा, कि मेरे स्वर्गीय पिता जी के एक ही चित्र (Photo) मेरे पास है। उस चित्र को बहुत सावधानी के साथ मैंने रखा है। उसी चित्र को, पिता की याद आने पर, जब कभी देख लेता हूँ। फिर भी मन में सन्तोष नही होता हैं। मेरा मन इतना उद्विग्न हैं, कि मेरे स्वर्गीय पिता जी को, कांश, कभी सपने भी देख लेता, तो कितना अच्छा होता ?

उस पुत्र का, उनके अपने पिता के प्रति, इतना प्रभावशाली मन का उद्गार सुनकर मेरा भी हृदय पिघल उठा। वह उद्गार कि "स्वर्गीय पिता को कम एक बार भी, सपने में, देख लेता तो कितना अच्छा होता !

मैंने मन ही मन सोचा, कि मेरे लिए यह कितना आसान हैं। कितनी ही बार अपने स्वर्गीय पिता को अपने स्वर्गीय चाचा को मैंने सपने में देखा है। उनके बातों को भी सुना हैं। जब भी मनन किया हैं, सपने में मैंने, उन्हें देखा हैं। परन्तु इस सज्जन के लिये, वह कितनी बड़ी समस्या हैं। कितना कठिन अपूर्ण अभिलाषा उनके जिंदगी में हैं।

भिन्न धर्म के नाम पर जिंदगी परिवर्तित है। पश्चिमी सभ्यता का सहज सरल रहन सहन है। और फिर भी उपर से मनगढ़न्त नियमों के बन्धन में; एक दायरे में है। यही कारण है; शायद यही एक कारण है, जो स्वर्गीय पिता को पुत्र से विलग किया है।

साहस करके मैंने उन से कहा, कि—यह तो बहुत ही आसान है। आपकी इस इच्छा की पूर्ति, आसानी से हो सकती है। परन्तु रहन सहन का तरीका, फिर बदलना होगा? मौलिक (Original) में फिर वापस आना होगा। मौजूदा हालत में तो नही हो सकेगा। यह सुनकर वे सज्जन चुप हो गये।

मुझे अन्तः करण में मालुम हो गया, कि उस सज्जन का फिर बदलने की आंतरिक झुकाव तो है। परन्तु भिन्न धर्म के धर्म गुरु का डर, सामने आड़े खड़ी है। जिसे अपने स्वर्गीय पिता जी के अलगाव के मूल्य पर भी चुकाने के सिवाय अन्य कोई उपाय नही है। वे चुप हो गये तो मैं भी चुप हो गया। और थोड़ी चुप्पी के बाद चर्चा का विषय बदल गया।

शायद उस सज्जन की तरह ही और कितने, वैसे परिवर्तित व्यक्ति होंगे, उनके परिवार के सदस्य होंगे, जो अपने पूर्वजों के चित्र मात्र को समय समय पर देखकर भी अपने व्याकुल मन को सन्तोष नही कर पाते होंगे।

स्वर्गीय पिता को, सपने में देख लेने का उत्कट अभिलाषा तो है; पर अब धर्म बदल गया है। उसके मुताबीक तरीके बदल गए हैं। और इस बदलाहट को इच्छा के नही रहते हुए भी, बलजोरी स्वीकार करने के सिवाय उपाय ही क्या है? अन्यथा बदलाहट साक्षात्कार कैसे होता।

यहाँ पर मैं, यह जानना चाहता हूँ, हर किसी से जानना चाहता हूँ, कि व्यक्तिगत समस्या का समाधान, व्यक्तिगत अभिलाषा की पूर्ति, जिस तरीके से भी हो सकें, उस तरीके को अपने हित में, अपनाना क्या उचित नही है?

जिंदगी में जो कुछ उपयोगी है, परिवार को जिसमें दैविक कल्याण है,, उक्त तरीकों पुनः अपनाने में संकोच क्या है? उस सज्जन के इस समस्या का समाधान कुलाचार में है। उनके इस उत्कट अभिलाषा को पूर्ति कुलधर्म में है। अन्यत्र नही है उस राह पर चल कर परीक्षा तो कर लीजिए?

शिवजी पार्वती से कहते हैं :—कि :—
कौलः धर्मात परो धर्मः नास्ति ज्ञाने तु मामके।
यस्य अनुष्ठान मात्रेण ब्रह्म ज्ञानी नरो भवेत॥
(कु० तं०)

कुलधर्म से उच्चतर, कोई भी धर्म मेरे ज्ञान में नही है। जिसके अनुशरण करने मात्र से आदमी ब्रह्म ज्ञानी

हो जाता है। मैं पूछना चाहता हूँ कि :—

अपने आत्म सम्मान के लिये, निज कुल से बढ़कर भी क्या संसार में कोई चीज है ?

—):o:(—

एक समस्या।

—):o:(—

जनवरी का महीना था। विकट जाड़ा का महीना था। इस समय सबेरे का धूप बहुत ही प्यारी लगती है। सूर्योदय के बाद से ही खुले आँगन के चबुतरे पर कुर्सी पर बैठकर धूप तापने का आनन्द भला कौन लूटना नही चाहता है ?

ऐसा ही समय में, एक सुबह; करीब आठ बजे; श्री जॉन मूरमू; अनुमण्डलीय आपुर्ति पदाधिकारी; सदर; पूर्णियाँ को, टुर्नामेन्ट हाउस के प्रांगन के चबुतरे पर, कुर्सी पर बैठे हुए, अपने कोठरी न० १ के अन्दर से मैंने देखा, तो मुझको अचंभा हुआ। मैं भी निकल आया और नमस्कार (Good Morning) कहते हुए, अपने भी कुर्सी लेकर; उनके बगल में बैठ गया और हाल पूछा।

मालुम हुआ कि वे सेकेंड अफसर से भेंट करने आए है। और प्रतिक्षा में बैठे हैं। सेकेंड अफसर श्री अमर सिंह, टुर्नामेंट हाउस के कोठरी न० ५ में रहते थे! और तैयार हो रहे थे।

पूर्णियाँ में श्री मूरमू; पादरी के बंगला के बगल वाली कोठरियों में परीवार सहित रहते थे। उनको घबड़ाहट के साथ हदस होने की बिमारी थीं। उनके इस बिमारी के बारे में कुछ पहले भी मुझे थोड़ा मालुम हुँआ था। और वे उसी बिमारी के इलाज में, गत दो महीने से परेशान हो चुके थे।

कुछ ही देर बाद, सेकंड अफसर के चबुतरे पर लगी कुर्सी पर आकर बैठ जाने पर, उसी बिमारी के संबंध में, उनसे विस्तार के साथ चर्चा चली। श्री मूरमू ने सेकेंड अफसर को बताया कि पूर्णियाँ के नामी डाक्टरों में, कोई डाक्टर नही बचे है, जिनका बताया (प्रेस्किफसन) दवाई उसने इस्तेमाल नही किया हो फिर भी हालत जस तस है।

रोग यही कि, अपने समकक्ष के पदाधिकारियों के साथ भेंट मुलाकात में, सामान्य स्थिति का अनुभव करते हैं। जहाँ एस० डी० ओ० के बुलाने की खबर आ जाती है, कि हृदय में डर के साथ हदश मालुम करने लगते हैं। और जब कभी समाहर्ता (कलक्टर) के बुलाने की बात आ जाती है, तो हृदय के अन्दर; डर के साथ हदश होने की स्थिति इतनी अधिक बढ़ जाती है; कि कुछ दूर तक चलने का हिम्मत और ताकत शरीर में नही रह जाता हैं। प्रायः ऐसा हमेशा ही रहता था। इस कारण वे अकेले भी नही चलते थे। और हमेशा रिक्सा पर सवार होकर ही

निकला करते थे। परन्तु मेरे नजर से तो उनकी शारीरक बुलन्दी एकदम दुरुस्त थी।

उसने चिकित्सकों के इलाज से निराश हो चुकने के कारण, रानीगंज (पूर्णियाँ) के निकट क एक भक्तिन बुढ़िया के पास जाने का निर्णय कर रखा था। उस भक्तिन बुढ़िया का आशीर्वाद बहुतों को लाभदायक सिद्ध हुआ है। और श्री मुरमू भी आशावान थे, कि उस भक्तिन बुढ़िया का आशीर्वाद. शायद कहीं उनको भी उसी तरह फायदा कर जाए. लेकिन उनका यह निर्णय सुनकर सेकेंड अफसर ने उन्हें वैसा करने से मना किया।

उसी दिन विस्तार से श्री मूरमू की हालत को जानकर फिर उस हालत का निदान के लिए, उनके योजना को जानकर, मेरा मन कुछ कहने को आतुर हुआ। परन्तु, मैं अपने को रोक लिया। सोचा; कि शायद मेरी बात अप्रिय न हो जाए ?

लेकिन श्री मुरमु का डावाँडोल मन का हालत को देखकर, मेरे मन के अन्दर में भी खलबली पैदा हो गई। मैंने सोचा और बहुत बार सोचकर भी अफसोस ही किया।

कि जो. धर्मगुरु पादरी के बगला में ही रहते हैं। दिन रात पादरी के संरक्षण में रहते है. वैसे भिन्न धर्म के अनुयायी श्री मुरमु आज मजबूरी में; सूदूर एक बुढ़िया के पास, सहारा पाने के लिये, अपने रोग से छुटकारा पाने

के लिए जाना चाहते हैं। गिरजा घर से दूर—पादरी से दूर—

वे धर्म गुरु, जिनके बगला में श्री मुरमु रहते है, क्या, उस भक्तिन बुढ़िया के मुकाबले का आशीर्वाद देने के सक्षम नहीं है ? शायद नहीं होंगे। इसी कारण तो श्री मुरमु को इतनी लाचारी है। पर उस भक्तिन बुढ़िया, जिनको पहले कभी देखा भी नहीं है; के लिए श्री मुरमु कितना आशावान हैं।

इससे यही अन्दाजा लगता हैं, कि उस भिन्न धर्म के प्रति; और उसके धर्म गुरु के प्रति, और उस धर्म के धर्म पुस्तक के प्रति श्री मुरमु का आस्था ढीला हो चुका हैं।

अपने तरफ से उपदेश देने की बात मन में बार बार आयी। परन्तु श्री मुरमु के, मुझ से कोई राय न पूछने के कारण, मेरा मन मसोस कर ही रह गया। कि धर्म बदल चुके हैं। शायद मेरी बात प्रिय न लगे।

मेरे मन के अन्दर जागृत यही बात थी, कि अपने ही परंपरा में, अपने ही कुलाचार में; फिर वापस आ करके देखो तो सही। कि उस बुढ़िया के मुकाबल का तो छोड़ दीजिए; उससे भी कही अधिक ऊंचे दर्जे का आशीर्वाद, पूर्वजों के द्वारा, आपको अपने घर में ही मिलता है या नहीं ?

यहाँ मैं यह बता देना चाहता हूँ, यह प्रकाश कर देना चाहता हूँ कि श्री मुरमु के कुल (वंश) के पित्तरों की आत्मा

भोजन पानी के अर्पण के बिना वृहद् ब्रह्माण्ड में भटक रही है। भुखे प्यास बहुत दिनों से परेशान है। और परेशानी की हालत में पूर्वजों की वे आत्माए; श्री मुरमु की आत्मा को भी परेशान करने लगे है ?

उनके ही कुल के उन पूर्वजों के आत्माओं को शुद्ध भोजन पानी के अर्पण के बिना, श्री मुरमु को और उनके परिवार को, जिंदगी में सुख शांति पाने की उम्मीद नहीं है।

—०—

झलक (Flash)

इस धरती पर कितने ही आदमी आए, जिए, और फिर चले भी गए। वैसे कितने ही लोगों ने यह दावा किया कि यह मेरा भिन्न धर्म हैं, यह मेरा भिन्न धर्म ग्रन्थ है, और उसके अन्दर यह मेरा भिन्न रहन सहन के तरीके हैं।

दाबी करने वाले का, संसार से सदा के लिए बिदा होने की बारी आई। धर्म ग्रन्थ और वे तरीके तो जहाँ के तहाँ रह गए। लेकिन उस दिवंगत व्यक्ति के साथ उनके उस भिन्न धर्म का, छाप (मोहर) भी आत्मा पर लगाकर चला गया — इसका पता नही हैं।

ऐसा होने संबधी, ज्ञान अभी तक मुझको नही मिल पाया है। कौन पता कर सकता है ? कैसे पता हो सकता हैं ? कोई मुझे बता देता, तो मैं नत मस्तक हो जाता।

संक्षिप्त ब्रह्म ज्ञान

—:०:—

संसार के नामकृत भिन्न धर्मों की पृष्ठ भूमि में; सृष्टि के अन्दर, अपनी स्थिति, दृश्य और अदृश्य अपने कुलों की स्थिति का ज्ञान अपने पास ही होना चाहिए। इसके लिए, अपना एजेन्ट बहाल करना उचित नही हैं।

ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि, जहाँ आप रहते हैं वह तेरा असली घर नही है। जिस परिवार में अभी आप रहते हैं, वह परिवार भी तेरा असली परिवार नही है। जिनके साथ अभी खड़े है, वे भी एक दिन आप से तनहा खड़े होंगे।

तो क्या, इसी तरह छिन्न विछिन्न होना उचित है ? वैसा हो सकता है; बशर्ते कि आप कुल का ज्ञान हासिल कर; अपने कुलाचारी न बनें और अपने पुत्र को भी कुलाचारी द बना लें। और अपने घर को ही एक धाम नही बना लें। अन्यथा, अपने तथा, अपने वारिशदारों को, छिन्न विछिन्न होकर, अन्धकार में भटकना ही है। एक दूसरे से विलग होकर अंधकार म रहना ही है।

तब सवाल उठता है कि, धरती पर के वर्तमान घर में और वर्तमान परिवार में, कहाँ से आएं ? आकर कैसे जीते है ? जीने का समय अंत होने पर कहाँ जाते हैं ! और वहाँ जाकर किसमें प्रवेश करते है ? इसे जानने का

अवश्य कोशिश करें। यही ब्रह्म ज्ञान है। और बृहद् ब्रह्माण्डीय ज्ञान है।

उपरोक्त चार वाक्यों को अगर और सरल कर दिया जाय तो यही बात होगी, कि आप जन्मते है, या ऐसा भी कहना उचित ही है, कि आप अवतरित होते हैं; तो आने का श्रोत कहाँ है? आकर; धरती पर कुछ समय के लिए जीते है, तो किनकी कृपा से जीते हैं।

फिर मरते हैं, और मरने के बाद, वारिशदारों, कुटुम्बीयों और मित्रों की यादगारी से कुछ दिनों के अन्दर ही गायब भी हो जाते हैं। स्थूल शरीरों का सम्पर्क समाप्त हो गया, और उसके साथ साथ आत्मिक (सूक्ष्म) शरीरों का सम्पर्क आरंभ नही हुआ।

इस कारण ऐसा गायब हो जाते हैं, कि मानों, अपने परिवार में और कुटुम्बियों के बीच कभी आए ही नही थे। अब उनसे छुट गए तो फिर किन में जुट गए? या किनमें जुटेंगे।

इन सवालों का जवाब, अभी जीवित रहते हासिल कर लीजिए। यही ब्रह्म ज्ञान है। इससे परलोक प्रकाश मय हो जाता है। जिंदगी सरल हो जाती है।

जाहिर रहे, बहुत ही स्वार्थी दुनियाँ है। भिन्न धर्मों में पुराने रिश्तादारों की कोई कदर नही होती है। एक रिश्तदार का स्थान खाली हुआ, कि दूसरे रिश्तादार इस

खाली जगह को भर देते है। यहाँ रोज नये रिश्तेदार ढूँढे जाते है। यह गलत नही है।

क्यों ऐसा होता है?

अपने प्रिय के साथ क्या यही छोटा सा रिश्ता है! कि आज प्रेम पूर्वक मिले और कल उनके याद से ही बिलकुल गायब हो गए।

भिन्न भिन्न धर्मों के ठीकेदारों? क्या, इसका गुप्त रहस्य मुझको बता सकेंगे? क्या इसका रहस्य; आप, अपने अनुयायियों को समझा सकेंगे?

क्या ऐसा होना उचित है?

अगर उचित भी है तो, मेरे ख्याल से, केवल जानवरों के लिए ही उचित है। आदमियों के लिए उचित नही है।

विधवा को अदृश्य जगत में पति का पता (Traee) होना चाहिये। विधुर को ओझल पत्नि का पता होना चाहिए। परिवार के वारिशदारों को परिवार से ओझल निज जनों का पता होना चाहिए। धर्मों के छोटे बड़े ठीकेदारों को, ईश्वर के पुत्र, ईश्वर के पैगम्बर का अवतारी का पता (Trace) होना चाहिए।

क्या यह संभव नही है?

आपके दिमाग से अगर यह संभव नही हैं, तो व्यर्थ का आप भिन्न धर्मों में पजीकृत कराते है। व्यर्थ ही अपने को भिन्न धर्मों के संत कहलाते है। व्यर्थ का टीका चन्दन लगाते हैं। व्यर्थ का लम्बा कुर्त्ता पहनते है।

आपके निज भिन्न कर्मों की प्रक्रिया और सिद्धान्त चाहे जो भी हो; और निज भिन्न धर्म के कितने ही ऊँचे ओहदे को क्यों न आप सुशोभित करते हों, सृष्टि के पूर्वोक्त तीन सनातन नियम, जिसके द्वारा आप आते (जन्मते) है, जीते (जीवित रहते) है, और जाते (मरते) हैं, आप पर भी ठीक उसी प्रकार एक समान लागु होते हैं। जिस प्रकार आपके निज भिन्न धर्म के परिधि के बाहर रहने वाले, एक छोटे से छोटे तपके के आदमी के लिए लागु होते हैं। खुद बिचार करके देखिये।

क्या सृष्टि के उन तीन सनातन नियमों के परिप्रेक्ष में, आपमें, और अन्य किसी में कोई अन्तर है? क्या-भिन्न धर्मो के नाम पर, भिन्न स्तरों के नाम पर, भिन्न नामों, भिन्न कौमों, भिन्न जातों, के नाम पर भी कोई अन्तर है? उत्तर साफ हैं। अन्तर नही है।

तो क्या-एक समान हो, यह जानना, कि—"कहां से आते हैं? कैसे जीते है? जीने का अन्त होने पर कहाँ जाते हैं? और वहां जाकर किसमें प्रवेश करते हैं?" अपके लिए भी उचित नही है?

इस मृत्यु लोक में भिन्न धर्म के नाम पर, संस्था की ओर से एक सम्मान जनक ओहदे को आप अवश्य सुशोभित करते है। पर इस लोक से बिदा होने के बाद क्या—फिर उसी तरह के सम्मान जनक ओहदे को उस लोक (परलोक) में सुशोभित करेंगे। और अभी के जैसा वहाँ पर भी आपका स्वागत होगा?

और जो भी आप के निज भिन्न धर्म के अन्दर नही होने के कारण आपसे तिरस्कृत हैं। क्या इस लोक याने मृत्यु लोक से बिदा होने के बाद उस परलोक में फिर इसी तरह हो; याने अभी के तरह ही तिरस्कृत रहेंगे?

जब कोई बात निश्चित नही है, तो अभी, आप में मौजूद घमण्ड की भावना को त्यागिये। और निज भिन्न धर्म की सीमाओं को पार कीजिए। और यह ज्ञान हासिल कीजिए :—

"कि कहाँ से आए, और फिर आगे कहाँ जाएँगे?"

विश्वास मानिए, यह जाना जा सकता हैं। अभी जीवित अवस्था में जाना जा सकता है। मैने जाना है। इसी करण मैं आपको कह सकता हूँ। यह ज्ञान मृत्यु के बाद की रही है; अभी की है। इस लोक के इस पद को छूट जाने के बाद, यहां से बिदा लेने के बाद, फिर उस लोक के किस पद पर पहुँचेंगे।

कही ऐसा न हो कि, इस लोक के निज भिन्न धर्म की दृष्टि से, इस लोक के समाजिक दृष्टि से जो अभी तिरस्कृत है, उसके पहुँचने के स्तर से नीचे के स्तर में तो आप उस लोक में नही पहुँचेंगे? सबके लिए यही तो असली चिंता का विषय है।

विश्वास मानिए, लोक परलोक की अपनी असली स्तर को जान कर ही व्यक्ति, सृष्टि के धर्म के रास्ते

ईश्वर के धाम के तीर्थ यात्रा में, उचे से उचे स्तर पर पहुँच सकते है। निज भिन्न धर्म के धामिक ओहदों पर औपचारिक बहाली के द्वारा नही।

इस बात को मान कर तत्सम्बन्धी तथ्यों से प्रभावित होकर, अपने प्रयास, अपने प्रथम ज्ञान के बल पर परलोक में, अच्छे स्थान (स्वर्ग) में, अच्छी खासी स्वागत के साथ अगर पहुँच भी गए तो क्या, इतना ही भर सब कुछ है ? नही ? अपने प्रिय जन जो धरती के घर पर छूट गए हैं, उनके साथ संपर्क बनाए रखना भी बहुत कुछ है ?

जैसे कि आप ही के घर के, आप ही के कुल के पुत्र, पौत्र, गार्हस्थ्य (Household) जिंदगी में सफल हो और अन्त समय आने पर, वे भी एक के बाद एक आपही के बिलकुल सन्निकट तक दैविक लोक में पहुँच सकें।

और इस तरह धरती पर के अपने घर से उपर और स्वर्ग दूर से नीचे धरती के अपने घर तक, अपने तथा अपने ही कुल के पीढ़ी दर पीढ़ी के निज जनो का रिश्ता बना रहे। सभी तागा में गुँथे रंग बिरंग फूलों की तरह; सभी कुल के तागा में गुँथे रहे। और यह फुल मालां कुलेश्वरी के गल को सदा सुशोभित करते रहें।

इसी तरह की लक्ष्य को प्राप्त करने लायक ज्ञान ही असली ब्रह्म ज्ञान है। क्योंकि कुलेश्वर ही ब्रह्म है।

"न कुलं कुलं इति प्राहु ! कुलं ब्रह्म सनातनम ।"
"By kula is nol meant; familydignity, but the eternal Brahma"

आदिवासियो :—

अपने संबध का, आपके अपने कुल के संबध का यही असली तर्क संगत, व्यवहारिक एवं उपयोगी ज्ञान है। और फिर सब के लिये यही असली धामिक ठीकेदारी है।

अभी तक मुझे तथाकथित निज धर्मों के अन्दर संसार में कोई भी उदाहरण सुनने को नहीं मिले है। जिससे मालुम हो कि उस भिन्न धर्म के किसी अनुयायी के परिवार का एक सदस्त एक सौ वर्ष पहले आए थे या दो पुस्तों पहले आए थे; और अब भी उस परिवार परिवार के इस समय के जीवित सदस्यों के साथ वारीशदारे के साथ संपर्क बनाए हुए है। और उनके वारीशदारों का भी उनके साथ का संपर्क ताजा बना हुआ है। या ऐसा भी मालुम नही हुआ है कि भिन्न धर्म के ऊँचे ओहदेवाले कोई ठिकादार अपने अनुमानियों के बीच से ओझल होने के बाद भी अपने अनुमानियों के साथ आत्मिक संपर्क बनाए हुए हैं और समय समय पर इन्हे आत्मिक रुप में यों कहिए कि अनुमानियों के आत्मा के साथ अपने आत्मा के संपर्क मे दर्शन देते हैं। और फिर सूक्ष्म आत्मिक (Spirit) ... अनुयात्रियों का मार्ग दर्शन करते है।

पर पूर्वोक्त तथ्यों के प्रकाश में मैंने देखा है कि यहां भिन्न धर्मों के अन्तर्गत के परिवारों में या धार्मिक संस्थाओं में भी जो आया सो जायगा और जो गया सो गया। अंतिम एक शब्द में लोग कह दिया कि गया जी (Went for ever) कितनी दर्दनाक स्थिति है, तथा कथित निज भिन्न धर्मों की, और उन धर्मों से प्रभावित समाज की; संस्था की। जहां जिसमे कोई खोज खबर नही है, अपने प्रिय की, और निज जनों की; और अपनी भिन्न धार्मिक धार्मिक बिधान भी तैयार नही है इस ओर मुड़ने की। ऐसी हालत में यह कहा जा सकता है कि वर्त्तमान रिवाज तो पशु समान; जन्मते जीते और मरने वालों का हो सकता है। और अगर वर्त्तमान रिवाज को ही तथा कथित निज भिन्न धर्म, सही बतलाता है, तो यह धर्म नही, वह मनगढ़न्त धार्मिक नियमों का मकड़ा जाल है। और जिसमें फंस कर मकड़ा धार्मिक ठीकेदार के द्वारा नोचनी बर्दाश्त करते हुए; मन मसोस कर तड़प तड़प कर मरने के सिवाए अन्य उपाय नहीं है। इसमें अपने को लट-पटाना उचित नही है। किसी मनगढ़न्त नियमों के बन्धन में जीना उचित नहीं है। इसके विपरीत ज्ञानियों का वैसा रिवाज नहीं है।

वे तो कहते हैं कि इस क्षुद्र ब्रह्माण्ड का इस कण स्वस्थ शरीर का हर दरवाजा, हर खिड़की खुला रहे। जिससे कि हर दिशा से आने वाली ज्ञान इस शरीर में आसानी से प्रवेश कर सके। पूरा क्षुद्र ब्रह्माण्ड (शरीर) खुला है।

नव ज्ञान सागर में गोता खा रहा है। ज्ञान रुपी मणियों को बटोर कर बुद्धि रुप भण्डार गृह में संचित करता है। कितना आनन्ददायक है।

"आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः" (ऋग वेद)

आदिवासियों :—

सभी दिशाओं से सुद्ध विचार (noble thoughts) हमलोगों को मिले। अतः हर आध्यात्मिक शास्त्रों का अध्ययन करने के वाद हर आध्यात्मिक गुरुओं का ज्ञान हासिल करने के वाद जा तर्क संगत ज्ञान हो और जो शीघ्र फल दायक ज्ञान हो उसी ज्ञान को स्वीकार करें। आपके खुद अपने और आपके कुल के लिए जो उपयोगी हो उसी ज्ञान को कुल ज्ञान मे सम्मिलित करें।

समाजिक दृष्टि से आर्थिक दृष्टि से वश चाहे कितना ही नीचे स्तर का क्यों न हो जिस वश में आप अवतरीत हुए हैं, उससे नाता नहीं टूटे मरने के बाद भी नही टूटे; और मरने के कई सालों के वाद कभी जन्म ले तो स्वर्ग लोक से भी फिर अपने ही कुल (वश) में अवतरित हों। यह भला कौन आदमी, कौन भिन्न धर्मावलम्बी नही चाहते होंगे ?

मेरा तो यह अनुमान है, कि छोटा से छोटा, बड़ा से बड़ा परिवार; प्रजा से प्रजा और राजा से राजा परिवार अपने पास का सारा धन दौलत देकर या अन्य किसी

प्रकार से भी अपने निज जनों से नाता नहीं तोडना चाहेंगे। और जब तक जीवित है। मृत्यु लोक में; अपना जिन्दगी गुजारते हुए, स्वर्ग लोक या देव लोक के अग्रगामी; अपने कुल के आत्मिक सदस्यों से अवश्य ही सपर्क बनाए रखना चाहेंगे ?

लेकिन यहाँ तो कुछ मकरुरों के द्वारा धर्म को भिन्न (distinct) बनाने के प्रयास में अपने तथा अपने परिवार से संबधित लोगों के इतने बड़े उद्गार को, मनगढ़न्त नियमो के द्वारा धर्म के नाम पर दबाया जाता है इतना ही नहीं, केवल अपने भिन्न धर्म से संबंधित, धार्मिक पुस्तकों को ही पढ़ने के लिए मजबूर किया जाता है।

यहाँ पर यह मैं एलान कर कह देना चाहता हूँ कि जो चाहे जैसा भी ढींग हाँक ले, मुह हिला डुला कर; आँए बाँए भी करलें; ईश्वरिय सृष्ट के नियम सभी पर एक समान लागु होते है। वे नियम; जिसके द्वारा सभी आते हैं; जीते हैं और जाते हैं; सभी को एक समान प्रभावित करते हैं। किन्तु आदमी के द्वारा निर्मित; धर्म को भिन्न बनाने के मनगढ़न्त नियमों से तो सृष्ट के ईश्वरिय नियम प्रभावित नहीं होते हैं। सृजन किया के सृष्टि के धर्म; ईश्वर के धर्म है। कैसे प्रभावित होगा ? फिर ईश्वरीय प्रेरणा (impulse) से प्रभावित आदमियों का आत्मा को जुटाय रखने का; इतना बड़ा उद्गार कैसे दबाया जा सकेगा ? अरे खुद तो आप नहीं दबा सकेंगे।

अतः संसार में अपने निज जनों के प्रति स्नेह जितना प्रबल है; उतना आपके मजबूरियों के लिए सहानुभूति दिखाने वाले धार्मिक ठीकेदार का स्नेह कभी भी प्रबल नहीं हो सकते है इन बातों को ध्यान में रखते हुए निज जनों के स्नेह के दायरे में ही अपने को सीमित करना उचित है।

नामकृत भिन्न धर्मों के प्रचारकों का यह अफवाह भी होता है कि मरने के बाद कुछ नहीं होता है। प्रकृति से आए और प्रकृति में चले गए।

वर्षात के मौसुम में पानी के उपर पानी के बुन्दों के बुलबुले उठे और तुरत ही फूटकर उसी में समा गए। बात तो बहुत ही सरल है। और थोड़ी देर के लिए आकर्षक भी है। सुनकर दिल को थोड़ा अवश्य हलका कर देता है। निष्फिक्र बना देता है। परन्तु जिन्दगी इतना सरल नहीं है जिन्दगी के आपसी संबंध इतना सरल नहीं है। फिर जिन्दगी में या जिन्दगी के बाद आत्मिक संबंध उतना सरल नहीं है।

कितना कठिन है, कितना दर्दनाक है, कितना जीवन में ही शुन्य (Vaccum) पैदा कर देने वाला होता है वह क्षण, जिस क्षण में किसी का कोई प्रेरणों का प्यारा, अपने परिवार से ओझल (मृत्यु हो जाता है। यह भुक्तभोगी का ही अनुभव हो सकता है। धार्मिक ठिकेदार को नहीं। उनके तो कोई अपना प्रिय है ही नहीं तो उनको पता क्या चलेगा ? फिर उनको इस बात से मतलब ही क्या है,

कि किनके हृदय में किनके जिन्दगी में क्या गुजरता है ?

जिसने जिन्दगी के गहराईयों के अलावे आत्मा के जीवन की गहराईयों में प्रवेश किया है; वही ज्ञानी सही बता सकते हैं कि उपरोक्त अफवाहें कितना गलत है ? अगर उस अफवाह को ही सही मान लिया जाए तो आदमी को भिन्न धर्मों के ग्रहण करने की जरुरत ही क्या है ? और फिर भिन्न धर्मों के धार्मिक ठीकेदारों को अपने धर्म का प्रचार करने की जरुरत ही क्या है ?

भिन्न धर्मों को प्रचार करने का उसके अन्दर लोगों को निवधन करने का और उस धर्म के नियमों के मुताविक इतना तुल मतुल करने का जरूरत ही क्या है ? वे क्यों इतना परेशान हैं ?

सीधी सी वात है "प्रकृति से आए और प्रकृति ही में चले गए" किससे क्या मतलब ?

अपने घर मे आए अपने वेश में आए और फिर अपने घर एव अपने देश से चले गए। एक बाहरी आदमी, आपका क्या जरुरत हैं ? वाहरी व्यक्ति वे क्यों इतना परेशान है ? असलियत तो यह है कि बेचारे भिन्न धर्मों के धार्मिक ठिकेदारों को प्रचारकों को ईश्वरीय नियमों का यह ज्ञान, अपने पास है ही नही, कि मरने के वाद क्या क्या होता है ? इस ज्ञान को हासिल करना एक कठिन काम है। और बहुत सर्मामत; नियमित साधना और पवित्र रहन सहन के द्वारा ही यह ज्ञान प्राप्त हो

सकता है। और बेचारे ऐसा जिन्दगी निभाने से वे लाचार है। किसी तरह धर्म प्रचार की चापलूसी में मन तो साफ नही है।

वैसे मे मृत्यु के बाद होने वाली ज्ञान से तो वे खुद ही वंचित है। आत्मिक ज्ञान से वंचित है। इस तरह वे तो खुद अन्धकार मे है। तो बेचारे वे क्यों ऐसा नहीं कहेंगे कि "मरने के वाद कुछ नहीं होता है"। सृष्टि के अदृश्य नियमों की वास्तु स्थिति वैसी नहीं है, जैसा बिना योग साधना के साधारण दिमाग से धर्म प्रचारक सोचते हैं। और फिर साधारण अनुयायियों को बतलाते है। अदृश्य ही प्रगट होकर जब दृश्य हो जाता है तभी प्र टरुप की रेखा आँखों के द्वारा मस्तिष्क में अंकित हो जाती हैं। तब यह आदमी को ज्ञान होता है कि यह प्रगट रुप ऐसा है, वैसा है। किन्तु प्रगट होने के पहले के अदृश्य रुप को भी देखा जा सकता है। योग के जरिए देखा जा सकता है और प्रगट रुप के विलीन हो जाने के बाद भी उसी विलीन प्रगट रुप के अदृश्य रुप को योग साधना के द्वारा देखा जा सकता है। इसमे मात्र का संदेह नहीं है।

कुलार्णव एक उत्कृष्ठ योगाचार है। और कुलाचार भी कुलयोगी होता है। इसी कुलाचार के द्वारा ही आत्मा के साथ आत्मा का सम्पर्क लोक परलोक से स्थापित होता है। इस कारण, मेरे भाई अगर आप

अपने वंश के आत्माओं के अटूट संबंध को निज जनों एक के प्रति अपनी स्नेह को एक मामूली प्रचारक और साधारण स्तर के भिन्न धर्म के धर्म गुरु के भूलावे में आकर तिरस्कार करनाचाहते हैं, तो मृत्यु के बाद अपने ही निज जनों से सदा के लिए बिलग हो जाते हैं। यह खास आप के लिए ही कितना खतरनाक है ? मामूली प्रलोभन के भुलावे में कुल से बंचित होना जब चाहते है जो जिन्दगी तो क्या जीवन की बहुत भारी भूल करते हैं। और (Traceless Sprit) का जीवन निर्वाह करने को राजी होते हैं।

अन्दाज कीजिए कि आपका यह कितना वेदर्दी कदम है ? अपने से ही अपने को नाश करने का यह कदम अगर नहीं है तो क्या है ?

सृष्टि की तीन नियम; जन्म (appearance) स्थिति (existence) और मरण (disappearance) को जाना जा सकता है। इसी ज्ञान के प्रकाश में जिवित अवस्था में ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है; जीवत अवस्था में ही स्वर्ग लोक का दर्शन किया जा सकता है ! इसी ज्ञान के प्रकाश में अपने पूर्वजों को पहचान जा सकता है। इसी ज्ञान के प्रकाश मे लौकिक एव पारलौकिक, को अपना कुल प्रकाशित होता रहता है।

जहाँ कुलेश्वरी की कृपा से कुल ज्ञान का प्रकाश हो वहां निज कुल के कौन व्यक्ति का आत्मा औझल

हो सकता है ? और निज कुल से लेकर ईश्वरीय कुल के बीच में कौन पित्तर; कौन देवता, कौन अवतारी; पैगम्बर और ईश्वर पुत्र, कुलाचारी के पूजा अर्पण से बंचित हो सकता है ?

क्षूद्र ब्रह्माण्ड से लेकर बृहद् ब्रह्माण्ड के सभी कुछ कुल धर्म में ही समा जाते है। इस ज्ञान को हासिल कर लेने वाला व्यक्ति के लिए दिन और रात एक समान प्रकाशमान है। प्रतिदिन एव समान हो जाता है। दिशा एव मुहुर्त का एक समान शुभ हो जाते हैं। स्वर्ग, नरक का और लोक परलोक का एक समान दर्शनीय हो जाता है। जन्म; जीवन और मरण एक समान हो जाता है। उनका जिन्दगी तो क्या जीवन ही आनन्दमय हो जाता है। कुल ज्ञान से प्रकाशित जीवन के इसी तरह के आनन्द को ही परमानन्द (Bliss) कहा गया है।

अपने इसी तरह के कुल ज्ञान से अलोकित हों, अपने साथ अपने कुल में परमानन्द (Bliss) व्याप्त हो; भला वह कौन नही चाहता है ? जब किसी व्यक्ति के लिए अपने कुल का ज्ञान नही है; पित्तर लोक का अनुभव नही है। तो वैसा व्यक्ति के लिए दिन तो दिन ही है और रात भी रात ही है। दिन में जागता है और खाता है। रात में सोता है और व्याभिचार करता है। जैसा शशु भी करता है। तो वैसा लोग क्यों नही कहेंगे कि मरने के बाद कुछ नही होता है।

तत्व ज्ञान

भिन्न धर्मों की पूर्वोक्त संसारीक वातावरणों की पृष्ठ-भूमि में सृष्टि के अदृश्य नियमों एवं दृश्य नियमो के अन्तर्गत अपनी स्थिति क्या है ? किस प्रकार आप आये (जन्मते) हैं। जानने का कोशिश करें।

अपने संबंध का यही ज्ञान आपको पशु से भिन्न करता है। संक्षिप्त मे ऋषियों को, मुनियों को प्राप्त ब्रह्म-ज्ञान के आधार पर नर और नारी के मिलन से नर के श्वेत और नारी के रक्त (लाल) बिन्दु का मिलन होता है। दो बुन्दों के मिलन का यह खेल बहुत ही रोचक है। कभी सटते हैं; कभी बिछुड़ते हैं। परोक्ष में अत्यन्त ही गुप्त में होने वाला सफेद और लाल बिन्दुओं का यह गुप्त मिलन ही असली दैविक पति और दैविक पत्नि (Celestial Husband and wife) का मिलन कहा जाता है। परोक्ष में उनके मिलन के बिना चित्त का बनना ही संभव नहीं होता है।

श्वेत और रक्त बिन्दुओं के मिलन से युगल बिन्दु का निर्माण होता है। युगल बिन्दु के निर्माण के साथ साथ ईश्वर के शक्ति का अंश भी युगल बिन्दु में प्रवेश कर जाता है। ईश्वर के शक्ति का अंश के प्रवेश के साथ चित्त का निर्माण पूरा हो जाता है। अब जीव सहित यह मिश्रित बिन्दु; बीज रूप मिश्रित बिन्दु हो गया।

इसी बीज रुप मिश्रित बिन्दु में तीनों देव, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, की तीनों शक्तियाँ; जन्म-पालन-मरण से संबंधित तीनों गुण, सत्व-राजस-तामस की जानकारी देनेवाली यह तीनों वेद (ज्ञान) प्रगट करनेवाली देवनागरी लिपि के सभी अक्षर अ से ह तक और मंत्र तंत्र एवं तंत्र विद्यमान हैं। युगल बिन्दु में ईश्वर के शक्ति का अंश से प्रवेश का अर्थ जीवन का प्रवेश समझना चाहिए।

क्षणों के गुजरते मिश्रित बिन्दु के उच्छुन (विस्तार) होने पर मिश्रित बिन्दु फूट जाता है। फूटने के उस आवाज को ऋषि मुनि ही सुन सकते हैं। इसी फूटने की आवाज के साथ ही, उस मिश्रित बिन्दु में प्राकृति के पंच तत्व (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा) का मात्र से प्रवेश हो जाता है और इन तत्वों का घनीभूती करण (Condensation) हो जाता है। घनीभूत करण के साथ ही जीव सहित शरीर के १६ तत्व पूर्ण हो जाते हैं।

वृहद् ब्रह्माण्ड के तत्वों का यही घनीभूत रूप क्षुद्र ब्रह्माण्ड (शरीर) है। जिसमें सभी कुछ है। यहां सोचने की बात है कि, युगल बिन्दु में ईश्वर के शक्ति का अंश अगर प्रवेश नहीं होता तो नर के श्वेत और नारी बिन्दुओं के एक में एक रूप जुटने से ही क्या होता? वह युगल बिन्दु तो निर्जीव ही रहता। उसमे चित' का निर्माण नहीं होता।

ईश्वर के शक्ति के अंश के प्रवेश के बिना ही बहुत से अभागे दम्पतियों मिलन विफल होता है। उन का उन्हें सन्तान लाभ नहीं होता है। जब युगल बिन्दु

में ईश्वर के अंश चित्त के रूप मे मौजूद है, वो चित्त का आवरण पंच तत्व घनीभूत है। इन्ही तत्वों के घनीभूत आवरण का चित्त शक्ति के द्वारा वृद्धि होता है। विकास होता है। और समय के गुजरते तरल स्थिति से स्थूल स्थिति मे बदल जाता है। यही परिवर्तित स्थूल रूप शरीर क्षुद्र ब्रह्माण्ड है। क्योंकि अब उस शरीर में वृहद् ब्रह्माण्ड के सभी कुछ तत्व विद्यमान है।

अतः वृहद् ब्रह्माण्ड का पुत्र क्षुद्र ब्रह्माण्ड हुआ जो अभी माँ के गर्भ में हैं।

तब इसका निचोड़ तत्व ज्ञान में ही होता है—कि :—

शक्ति ने अपनी शक्ति से युगल विन्दु में प्रवेश किया और अपनी शक्ति से ही शरीर का निर्माण किया।

नर-नारी याने माता पिता ने मिल कर युगल विन्दु का केवल मंच तैयार किया। जिस मच पर ईश्वर के शक्ति का अंश 'चित्त' (याने आत्मा, रुह, (Spirit) तैयार हुआ।

ऐसी हालत में यही तक प्राप्त ज्ञान के अधार पर, जब हम विचार करें; कि माँ के कोख में प्रथम उस मिश्रित बिन्दु के रूप में हम क्या है? लड़का है या लड़की हैं? हिन्दु है या मुसलमान? सिख है या ईसाई?

केवल लड़का या लड़की के संबंध में योगी अन्तर्यामी ही बतला सकते है। इस समय जो कुछ हैं तरल (Jelly)

रूप में है। जो कुछ है विकार रहित है। नाम रहित हैं, जात रहित हैं। कौम रहित है।

अभी जो कुछ संबंध हैं; वह, यही कि वृहद् ब्रह्माण्ड का घनीभूति करण क्षुद्र ब्रह्माण्ड (Miniature Univvevse) रुप में हो रहा है। वृहद् ब्रह्माण्ड, अपने रूप को क्षुद्र (छोटा) कर रहे है। वृहद् ब्रह्माण्ड पूर्ण है, और उसी का बौना रुप क्षुद्र ब्रह्माण्ड भी पूर्ण है। क्योंकि वृहद् ब्रह्माण्ड के सभी तत्वों का ही घनीभूति करण (Candensation) हो गया है। इसी कारण ऋषि कहते है :—

"ॐ पूर्ण मदः पूर्ण मिदं, पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवा व शिष्यते॥",

(इ० उ०)

मंत्र 'ॐ" (शब्द Sound) वृहद् ब्रह्माण्ड का ही शब्द रुप है। वृहद् ब्रह्माण्ड के ही संबोधनार्थ है।

पूर्ण + अदः = वह (वृहद् ब्रह्माण्ड) भी पूर्ण है।

पूर्ण + इदं = यह (क्षुद्र ब्रह्माण्ड) भी पूर्ण है।

पूर्णात् + पूर्ण + उच्यते = पूर्ण से ही पूर्ण की (वृहद् ब्रह्माण्ड से ही क्षुद्र ब्रह्माण्ड का) उत्पति होता है। कितना सुन्दर लगता हैं? अन्दाज कीजिए। मन प्रफुल्लित हो उठता है।

हे आदिवासियो; हे अन्य लोगों?

अपने दिमाग को विस्तार कीजिए, विस्तार कीजिए,

विस्तार कीजिए, और इतना विस्तार कीजिए कि वृहद् ब्रह्माण्ड में फैल जाए।

परम पिता वृहद् ब्रह्माण्ड के पुत्र पौत्र क्षुद्र ब्रह्माण्ड आप है। वृहद् ब्रह्माण्ड का नमूना (Sample) क्षुद्र ब्रह्माण्ड बौना रुप आप है।

वृहद् ब्रह्माण्ड के पुत्र-पौत्री, माता-पिता के रुप में युगल होकर युगल बिन्दु का मंच तैयार किया है। जिसमें ईश्वर के शक्ति का अन्श ईश्वर के रूप आसीन है, विराजमान है।

अतः परम पिता अपने शक्ति का अंश माता पिता के युगल मच के द्वारा अपना पौत्र चित्त (आत्मा) के रुप में भेजा है, जो हमारे आप के शरीर में, शुरु के तरल स्थिति से लेकर, आज अभी स्थूल स्थिति तक विद्यमान है। यह चित्त जिस समय शरीर को छोड़ देगा, उसी समय यह शरीर, अवयवों से पूर्ण होकर भी. निष्क्रिय हो जाता है। शरीर नाश हो जाता है। परन्तु चित्त नष्ठ नही होता है।

पूर्णस्य = पूर्ण का (वृहद् ब्रह्माण्ड का) पूर्ण = शरीर (क्षुद्र ब्रह्माण्ड) को. आदाय = घटाने पर, पूर्ण + ईव + अव शिष्यते = शेष्य पूर्ण ही रह जाता है।

ईश्वर के शक्ति (Suprme Power) का अंश चित शक्ति (Power) के रुप में निकल आने पर भी; ईश्वर की शक्ति जस क –, यान पूर्ण ही रह जाता है।

वृहद् ब्रह्माण्ड के प्रथम अंश क्षुद्र ब्रह्माण्डों, (नर-मादा याने माता पिता) के द्वारा पुनः क्षुद्र ब्रह्माण्डों (पुत्र-पुत्रियों) का निर्माण (सृजन) होता है। होता रहता है। वृहद् ब्रह्माण्ड के शक्ति से सचालित क्षुद्र ब्रह्माण्डों का प्रगट होते रहने का यह सिल सिला सनातन (eternal) है।

दूसरे शब्दों में—ईश्वरीय शक्ति के अंश से निर्मित पूर्व चित्त शक्तियों [माता-पिता के चित्त शक्तियों] के द्वारा एक के बाद दूसरे चित्त शक्तयो का, पुत्र, पुत्रियों पौत्रों के रुप में पुनः निर्माण याने बार बार सृजित होता रहता है। और चित्तों का यह सिलसिला सनातन है।

अतः वर्तमान में मौजूद आप. पुत्र (चित्त शक्ति या क्षुद्र ब्रह्माण्ड) का सीधा संबंध, पहले निर्मित; (मौजूद या ओझल) माता पिता के चित्त शक्तियों, क्षुद्र ब्रह्माण्डों के द्वारा, और इस पूर्व में स्थित होकर ओझल आपके माता पिता के माता पिता, के द्वारा ही वृहद् ब्रह्माण्ड याने ईश्वरीय शक्ति से है।

आपके सबंध क., इसके अलावे अन्य स्थिति (Position) का तो गुंजाईश ही नही है। वृहद् ब्रह्माण्ड अपने आप स्थित है। पुत्र पुत्री का माता-पिता के साथ पुत्र पुत्री का माता पिता के द्वारा दादा-दादी याने पूर्वजों [पहले जो जन्में है] के साथ, और सब से आखिर में, पुत्र-पुत्री का माता-पिता आदि पर्वजों के द्वारा, सब के

परम पिता (ईश्वर-ईश्वरी] के साथ सबंध है। यही कुल है।

इसी समझदारी के साथ ससार में आचरण करना ही कुलाचार है। इसी सम्बन्धों को निष्ठा के साथ पूर्ण पवित्रता के साथ कायम रखना ही कुल धर्म है। इसी कुल धर्म को जानने समझने और मानने वाले ही कोल हैं।

हम बहुत आगे चले गए। फिर पीछे लौट कर आगे बढ़ेंगे।

यह तरल रुप, मां के गर्भ का यह तरल रुप, माता पिता के अपनाए, जात, कौम एवं धर्म के द्वारा प्रभावित नही होता है। और न इस जात, कौम एवं धर्म क द्वारा तरल रुप मिश्रित बिन्दु का, जात, कौम और धर्म निश्चित [determine] हो सकता है। अगर वैसा हो सकता तो ईश्वर की शक्ति को ही परख कर ईश्वर के शक्ति के अंश को कई जातों, कौमों. और धर्मों म बाँट लिया जाता।

लेकन आदमी माँ के गर्भ से धरती पर प्रगट होने (जन्म ने) के बाद अपने श्रोत उद्गम के सिल सिला को भूल जाता है। बचपन में तो करीब ठीक रहता है। मगर सयाना होकर एकदम भू त जाता है।

चित्त शक्ति को ही अगर जात, कौम एवं भिन्न धर्मों में बाँट दिया जाता तो देवों को भी बाँट लिया जा सकता।

मगर अफसोस !

आदमी के द्वारा स्थापित भिन्न धर्मों के बड़े बड़े

ओहदे वाले धार्मिक ठीकेदारों के द्वारा भी ईश्वरीय भक्ति का, जातों, कौमों. एवं उन से संबधित 'भिन्न धर्मों' में बँटवारा होना सभव नही है। अगर कोई धर्म गुरु इसको भी संभव बतावे, तब उन से तो ईश्वर ही छोटा हो जाता है।

लेकिन तब क्या—ईश्वरीय शक्ति के अंश चित्त शक्ति का प्रकार हीं नही हो सकता है ?

चित्त शक्ति का प्रकार अवश्य निश्चित किया जा सकता है; और केवल एक ही तरीका कर्मो के द्वारा, चित्त शक्ति को धारण करने वाली शरीर से की गई कर्मों के द्वारा ही चित्त का प्रकार निश्चित किया जा सकता है।

एक शुभ कर्मो करने वाली शुभ चित्त है और दूसरा अशुभ कर्मों वाली अशुभ चित्त है !

इसी कारण, चित्त या रूह या Spirit की गति भी दो ही बतलाई गई है। शुभ कर्मों वाली चित्त के द्वारा स्वर्ग सुखों की प्राप्ति है और अशुभ कर्मों वाली, चित्त के द्वारा नरक के दुःखों की प्राप्ति है।

और सृष्टि का, यह वृहद् ब्रह्माण्ड का; ईश्वरीय शक्ति का ज्ञान भीं शुभ कर्मों वाली चित्त के द्वारा हीं संभव हो सकता हैं। अतः शुभ कर्मों को करते हुए ही, चित्त धारी आदमीं के नियमों (जन्म, जीवन, और मरण) का ज्ञान प्राप्त कर सकता हैं। उस ज्ञान से प्रकाशित हो, दैविक आनन्द, परम (Iivine Bliss)

का लाभ उठा सकता है। और अपने में ही दैविक शक्तियों का अर्जन कर सकता है। और इस तरह अपने आत्मिक शक्ति को ही कई गुणा बढ़ाकर असंभव कार्यों को भी संभव कर सकता हैं। वहाँ तक की उन अर्जित शक्तयों के द्वारा किसी के मृत्यु को भी टाल सकता हैं। और अपने अस्थायी रुप से कई बार शरीर को त्याग कर आत्मा (चित्त शक्ति) के द्वारा देव लोकों का भ्रमण कर सकता है। स्वर्ग का दर्शन कर सकता हैं। जीवित अवस्था में हीं मोक्ष को भी प्राप्त हो सकता हैं। इसमें कोई सन्देह नही।

चित्त शक्ति [आत्मा] अमर हैं। इस कारण, चित्त शक्ति के अर्जित अतिरिक्त शक्तयो के द्वारा, अपने शरीर को भी कई बार बदल सकते हैं वह सब कुछ आप (चित्त धारी) के मन एवं बुद्धि के सही उपभोग पर ही निभर करता है। कुलयोगी क द्वारा वह सब कुछ सभव हैं।

परन्तु सृष्टि के नियमों के मूल्य धारा के विपरीत, भिन्न धर्मो के मनगढ़न्त नियमों के द्वारा अपने आचार व्यवहार को, भिन्न बनाने से वैसा संभव नही हो सकता है।

वह विकार हीन; चित्त शक्ति से युक्त; विकार हीन मिश्रित बिन्दु का मादा [Femle] के द्वारा कोख में धारण हुआ। वृहद् ब्रह्माण्ड के सभी तत्वों से युक्त उस मिश्रीत बिन्दु रुप सूक्ष्म ब्रह्माण्ड का धारण ही मादा का गर्भ धारण हुआ। और सभी तत्वों से युक्त उस घनीभूत रुप को चित्त शक्ति ने अपनी शक्ति से ही विकाश किया और वही विकसित रुप स्थुल शरीर होते गया।

चित्त शक्ति, अपनी शक्ति से शरीर का विकाश करते है या नही करते है, इसका प्रमाण क्या हैं।

जहाँ, जिस माता के गर्भ में चित्त शक्ति के द्वारा शरीर का निर्माण बन्द हो जाता है वहाँ अपुष्ट शरीर के हालत म ही असमय में गर्भपात हो जाता है। पर जब शरीर पूर्ण निर्मित होता हैं तब यह कहा जाता हैं; और यह तक संगत भी हैं, कि चित्त शक्ति के, अपने ही शक्ति से शरीर का निर्माण किया। [The power with its own power has devoloped the body]

वह मिश्रित बिन्दु घनीभूत होकर, सभी अवयवों से युक्त पूर्ण निर्मित शरीर के साथ, स्थूल रुप में, समय के गुजरते माँ के प्रसव के बाद, जब धरती पर प्रगट होता है, अवतरित होता हैं, तभी, माता पिता को और अन्य सर्व साधारण को मालुम होता हैं कि सन्तान लड़का हैं या लड़की है।

अतः चित्त शक्ति से युक्त हमारे प्रगट होने में हम माँ के जितना ऋणी हैं, उतना किसी के भी नही है। पिता तो हमारे अवतरण की क्रिया में माँ का सहयोगी मात्र है।

सृष्ठि कर्त्ता [ईश्वर] के सृजन की प्रथम क्रिया को कायम रखने में माता पिता का ही योगदान है। ईश्वर की कृपा एवं प्रेरणा के द्वारा ही उनका योगदान है। और उस योगदान के फलस्वरुप हमारे प्रगट होने में माँ ही एकमात्र द्वारा [media] है।

इस बात को जानते हुए, समझते हुए भी, माँ की पूजा नही होती है। उनका सेवा सुश्रुखा नही होता है। कुछ भिन्न भिन्न धर्मों में तो माँ का स्थान ही नही है। उन भिन्न धर्मों के ठीकेदार तो मातृ पूजा को मात्र नारी करण [Mere Feminigation] कह कर माँ रुपों का तिरस्कार करते हे। कितना दुःख का बात है? इसी कारण तो मैंने प्रथम पृष्ठ में ही यह दर्शा दिया है कि "नारी पूजा के पात्र है।"

स्थूल रुप में लड़का माँ लड़की के रुप में प्रगट होने के बाद भी मर्द होने और बुढ़ा होने तक भी हमारे शरीर का विकाश शरीर में प्रविष्ट चित्त शक्ति के द्वारा ही होता है।

यह इस बात से अन्दाज कर लीजिए कि बचपन या किशोर अवस्था में ही अगर चित्त शक्ति शरीर से बाहर हो जाए तो शरीर की अकाल मृत्यु हो जाती है।

इस कारण हम चित्तधारी है और शरीर में, शुभ विचारों, शुभ कर्मों एवं पवित्र रहन सहन के द्वारा संतुष्ठ करते हुए चित्त का; सही धारण ही धर्म है। अपना निजी लाभ का धर्म है।

फिर पुत्र के चित्त शक्ति के अवतरण में योगदान करने वाले माता पिता के चित्त शक्तियों को खुश करने लायक, संतुष्ठ करने लायक सेवा ही उत्कृष्ट धर्म हैं।

और फिर अपने चित्त को सन्तुष्ट करते हुए; पूर्वज पित्तरों के चित्तों को खुश करते हुए, अधिष्ठात्री पित्तर

[ईश्वर] को खुश करना ही सर्व श्रेष्ठ धर्म है। यही कुलाचार है।

इसी पुत्र के द्वारा अपने तथा अपने कुल के चित्तों का सुख पूर्वक धारण ही धर्म है। "धारयामि" धारण करता हूँ। क्या धारण करते हे? चित्तों का धारण करते है।

अतः हमारे सृजन में माँ का इतना बड़ा योगदान को देखते हुए हर किसी को अपनी माँ का पूजा करना चाहिए। और संसार में अपनी पत्नी को छोड़कर, बच्चो से लेकर बुढ़ी तक को माँ स्वरुप ही देखना चाहिए। माँ सरीके ही उनका आदर करना चाहिए। यह एक बहुत प्रभावकारी रुप से फलदायक धर्म है।

अतः अब ईश्वरीय शक्ति के अंश का चित्त शक्ति के अवतरण के लिए मंच तैयार करने वाले; माता पिता के युगल चित्तों का कितना बड़ा योगदान है, यह भी स्वयं अन्दाज कीजिए।

इस कारण पूर्वजों के चित्तों का पूजा करना याने पितृ पूजा (Aneestral Worship) करना कितना उचित है। इस बात का भी अन्दाज कीजिए। कोई भी पुत्र, उनके अवतरण (जन्म) से सवधित माता पिता, के कितना ऋणी है? इसका भी अन्दाज कीजिए।

यह ऋण पुत्र के द्वारा नामकृत भिन्न धर्मों के धर्माचरण द्वारा सधाया नही जा सकता है। इस ऋण से

उऋण होने का पुत्र के लिए एक मात्र उपाय कुलाचरण है। कुल धर्म है। और कोल आदिवासी युग युगों से गुप्त रूप से, इस कुल धर्म को अपने हृदयों में संजोय हुए है।

—) ०:(—

अब करीब करीब इतनी तो बात साफ हो जानी चाहिए, कि हमारा सृजन किस प्रकार होता है।

जिस चित्त शक्ति के कारण, हमारे शरीर का निर्माण संभव हुआ है, वह चित्त शक्ति, जब तक शरीर में है, तभी तक जिन्दगी है। जब यह शक्ति शरीर से (समय से पहले या समय के अन्त में) निकल जाता है, तो शरीर के सारे अंग प्रत्यंगों के सही सलामत होते हुए भी शरीर निष्क्रिय हो जाता हैं। और तब लोग यही समझ लेते है कि वे तो मर गए। किन्तु चित्त अमर है।

किसी भी भिन्न धर्म के अन्दर आप रहें, हमारी असली चिंता तो इसी बात का होना चाहिए, कि जिस चित्त शक्ति को हम धारण करते हैं, वे बहुत काल तक शरीर में मौजूद रहें। और इस तरह बहुत काल तक हमारे शरीर को क्रियाशील बनाए रखे।

हमारे शरीर में निहित चित्त शक्ति को, जिस धामिक आचरण के द्वारा टिकाए रखा जा सकता हैं, और फिर उस टिकाए रखने के प्रयास में, दिवगत माता पिता एवं पूर्वजों के जिन चित्त शक्तियों के संरक्षण में जिस

धर्माचरण के द्वारा रखा जा सकता है, और अपनी सहित पूर्वजों की जिन चित्त शक्तियों को जिस परम चित्त शक्ति (Supreme Power) के संरक्षण में, जिस धर्माचरण के द्वारा रखा जा सकता हैं, हमें उस धर्माचरण का सहारा लेना क्या उचि नही है ? निश्चय उचित है। इसका निर्णय खुद हमीं को करना है। भिन्न धर्मो के धार्मिक ठीकेदारों को नही।

क्यों कि हम; अपने लिये जीते हैं। अपने माँ बाप लिये जीते है। अपने बच्चों के लिए जीते हैं। इस तरह हम अपने कुल के लिए जीते है। सही जीते हैं या गलत जीते हैं, इसकी परीक्षा खुद करना हैं। जो अपने ईश्वर, अपने कुल के लिये फलदायक हो; वही धार्मिक आचरण हमें अपनाना है। भेड़ बकरी के तरह किसी के द्वारा अपने को नही चरवाना हैं। नही खदेड़वाना हैं।

अगर किसी कारण वश, नाराज होकर, वह चित्त शक्ति समय के पहले या समय के अन्त में शरीर से निकल भी जाए तो, वह उस शरीर के द्वारा किये गये कार्यों का छाप लेकर, बहुत काल तक बृहद् ब्रह्माण्ड में विचरण करता रहता है। और कर्म के मुताबिक विभिन्न योनियों से, बहुत काल तक गुजरता हुआ, पाप कर्मों के गन्दे छापों से परी शुद्ध होने पर, निर्मल होने पर ही चित्त शक्ति; ईश्वर तत्व में शामिल होता है।

उस विचरण करता हुआ चित्त शक्ति के लिये, या

विभिन्न योनियों से गुजरता हुआ चित्त शक्ति के लिये; कौन हितैषी हो सकता है ? सोचिए !

क्या कोई भिन्न धर्मों के ठीकेदार उस चित्त के हितैषी हो सकते है ? कदापि नही। इस चित्त के लिए इसी चित्त के उत्तराधिकारी कुल बासी ही हितैषी हो सकते है। वे ही उस चित्त को भोग अर्पण के तौर पर दाना पानी दे सकते है। वे ही उस चित्त को अपने ही घर में ठिकाना दे सकते है। अन्यत्र तो कोई गुंजाईश नही है। और वह भी कुलाचार के सिवाए अन्य भिन्न आचारों के द्वारा तो गुंजाईश नही है।

—):o:(—

पहचान

अदृश्य चित्त शक्ति से शक्तिमान, उस मिश्रित विन्दु का स्थूल शरीर रुप जब धरती पर प्रगट हुआ गर्भ से प्रसव हुआ था, दो दम्पति के लिए खुशी ही खुशी है। पितृ प्रधान समाज में अगर लड़का हुआ तो खुशी का सीमा नही। और मातृ प्रधान समाज के दम्पति को लड़की हुआ तो खुशी की सीमा नही।

चाहे खुशियाँ कितनी ही क्यों न हो, मगर फिर भी एक बहुत बड़ा संशय बना हुआ है। कि बच्चा अपने गोदी में आया तो सही, पर कहां से आया ? कहां से आया ? ? ?

इस बच्चा में अन्तर्विष्ठ चित्त शक्ति कहाँ से आया ? सीधे ईश्वर के शक्ति के अंश का चित्त शक्ति ? या वृहद् ब्रह्माण्ड में विचरण करता हुआ चित्त शक्ति है ? अगर विचरण करता हुआ चित्त शक्ति है तो स्वर्ग से आया है या नरक से आया है ? पूर्व जन्म का जात कौम क्या था ? धर्म क्या था ?

पूर्व जन्म के राक्षस के चित्त तो मेरे बच्चा में अन्तर्विष्ठ नही है ? या पूर्व जन्म के आदमी का चित्त ही फिर मेरा बच्चा में अन्तर्विष्ट हुआ है ?

साधारण जन को विवेक ज्ञान के बिना कुछ भी पता नही है। उपरोक्त उन सवालों का जवाब जाने बिना ही तत्सम्बन्धी ज्ञान हासिल किए बिना ही हर दम्पतियों का सपना होता है।—

"झिलमिल सितारों का आँगन होगा।
रिमझिम बरसता आँगन होगा॥"

आखिर में सितारे कौन होंगे ? कहाँ से टूट पड़ेंगे ?

इतनी बड़ी गहन अन्धकार में रहकर भी साधारण जन ढींग हाके जा रहे है कि—हमारा लड़का है, हमारी लड़की है। फिर बच्चा जब माँ के गोद में होता हैं तब—

"तुम्ही मेरी मंजिल; तुम्हीं मेरी देवता" ...

काश यही भावना अगर साकार होता, तो निश्चय ही उस बच्चा रुप देवता की पहचानने का पति-पत्नि कोशिश करते। और उस पहचानने के प्रयास के कारण,

परिवार के संस्कार में चार चांद लग जाता।

लेकिन पहचानने का प्रयास होगा कैसे ?

नामकुल भिन्न धर्म का बधन जो है। इस कारण पूर्व जन्म के संस्कार हीन बच्चों का परिवार में जन्म लेना, माता-पिता के आचरण से भिन्न आचरण का बच्चा जन्म लेना, स्वभाविक है। ऐसी अवस्था न होने दीजिए जिस अवस्था से उस नव जात शिशु के पूर्व जन्म का संस्कार मालुम नही हो सके।

उस बच्चा का पूर्व जन्म का संस्कार अगर मालुम नही हो सका हैं या मालुम भी हो सका है तो इस जन्म के संस्कार को उत्तम बनाना दम्पति का कर्त्तव्य है। उनको बचपन से ही कुलाचारी बनाना दम्पति का कर्त्तव्य हैं। परन्तु यह तभी हो सकता हैं कि जब कि दम्पति खुद कुलाचारी हों। अन्यथा यह नवजात शिशु अपना नही हैं केवल धोखा मात्र है। थोड़े दिनों का शान्त्वना मात्र है।

दम्पति—यह बच्चा तेरे द्वारा पैदा तो हुआ। परन्तु बड़ा होकर वह तेरा नही होगा। जिनके द्वारा वह बच्चा प्रगट हुआ, जिनके सहयोग से यह प्रगट हुआ, अगर वह बच्चा उनका सेवक नही बन सका तो क्या उस लड़का को उनका अपना कहा जा सकता है।

उस बालक से, सेवा सुश्रुषा के बिना माता पिता का मन तो नाराज हो चुका है, फिर दोहरा उसी मन से उस बालक को अपना कहने का भी माता पिता को साहस कैसे होता है ?

कुछ धर्मावलम्बियों का यह मत है, कि आदमी के द्वारा आदमी ही पैदा होता है। बात बिलकुल ठीक है। साधारण ज्ञान के समझ के मुताबिक तो बिलकुल ही ठीक है।

पुत्र हो तो हु-ब-हु पिता के शक्ल का हो, और हु-ब-हु पिता के आचरण का हो, और पुत्री हो तो हु-ब-हु माँ की शक्ल का हो, और हु-ब-हु माँ की आचरण का हो। लेकिन शत प्रति शत एसा होते नही देखा जाता है। बहुत मामलों में माता पिता के शक्ल से, आचरण से, पुत्र-पुत्री का शक्ल एवं आचरण भिन्न ही देखा जाता है। जब रुप की एक रुपता नही है, तो आचरण के एक रुपता का तो कहना ही क्या है।

एक ईंट के साँचा के द्वारा भिन्न भिन्न आकार प्रकार के ईट तैयार होंगे, यह विश्वास लायक बात नही है। फिर भी जब माता-पिता के शक्ल एव आचरण से भिन्न तरह के बच्चे पैदा हों तो इसका रहस्य क्या है ? जानने का कोशिश करें।

दम्पति मेरा तो यह सुझाव होता है कि बच्चा को रुप से नही वरन आत्मा (याने चित्त) से पहचान ने का कोशिश करें

बचपन में उस बालक को, तरह तरह के निजी भिन्न धार्मिक तरीके से, धार्मिक गुरुओं के मदद से, माता पिता तथा उनके सम्बन्धी अपना बनाने और अपने

परिवार नें शामिल करने का कोशिश करते है।

कोई बचपन के शरीर में गर्म लोहे का दाग देकर कोई गुप्त अंग का थोड़ा चमड़ा काट कर, कोई अपने भिन्न धर्म के लिये निर्धारित नाम देकर, कोई खास प्रकार का पोशाक पहनवा कर, अपना बनाने का कोशिश करते हैं।

ये सारे के सारे प्रयास अन्दाजी है। रस्म रिवाज़ के दिखावटी प्रयास हैं। अगर ऐसी बात नही होती तो उन प्रयासों के बावजूद भी क्यों बालक सयाना होने पर, माता पिता के आचरणों के विपरीत ही आचरण करता है? क्यों माँ बाप के आशाओं के विपरीत ही व्यवहार करता है?

बालक का विपरीत आचरण देखकर माता पिता का हौसला पस्त होने लगता है। और वे निराशमन से से पछताने लगते हैं; कि हमने इस बालक को, इस शैतान बालक को क्यों पैदा किया?

जवान होमे पर जब उसकी शादी हो जाती है तो वे माता पिता से अलग भी हो जाते हैं। फिर तो माता पिता का क्या परवाह? चाहे वे माता पिता कई दिनों से भूखे हों; शरीर का ताकत घट जाने के कारण; खिसक खिसक कर चल रहे हों; चाहे वे कादो में ही क्यों न लिपटे हों; माता पिता का क्या परवाह?

अपने तो अद्यतन डिजाइन (up-to-date) वाली पत्नि के साथ संसार की तरंगों में हिलकोरें भर रहे हैं। वे तो अपना संसार अलग बसा लिए हैं। अब वे माता पिता को अपने आँगन में आने तक नहीं देते है। कहीं पर देश में नौकरी करते हैं। ऊँचे पद को सुशोभित करते हैं। शहर में हैं। रहन सहन का दर्जा ऊँचा है। खुदा न खास्ते, कहीं किसी कारण वश, उस पुत्र के वासस्थान पर देहाती स्तर के वेश-भूसा के साथ बुढ़ा पिता पहुंच जाते हैं, तो डेरा में बहुत ही अशोभनीय वातावरण पैदा हो जाती है?

ऊँचे स्तर (High Standard) के रहन सहन से बिगड़ा हुआ मन से अपने ससूर को ससूर कहने तक में जब पतोहु झिझकती है; तो कहना ही क्या है? लिहाजा; किसी व्यक्ति के द्वारा बारामदा पर बैठे हुए; उस बुढ़े पिता का परिचय पूछने पर पुत्र उसे घर का नौकर तक भी बता देते है। जीवित अवस्था में पिता को दाना पानी देकर सेवा करने की बात जब सपन की बात हो गई तो वैसे संस्कारहीन पुत्र के द्वारा मृत्यु के बाद पिता के आत्मा की पूजा होगी - सोचने की बात है।

लेकिन पुत्र का, वृद्ध माता पिता के प्रति उस तरह का व्यवहार उचित नहीं है। धर्म संगत नहीं है। ऐसी स्थिति हर दम्पति के लिए जीवित अवस्था में तो क्या मरने के बाद भी कभी नहीं आने पावे, इसी अभिलाषा के साथ यह मेरा प्रयास है और आपको मेरा यह हार्दिक उपदेश है कि कुलाचार को अपने तथा अपने ही कुल के कल्याण के लिए स्वीकार करें और फिर इसे कायम भी रखें।

नेकी का बदला

जैसा बचपन में उस पुत्र ने मां बाप के गोद में पैखाना पेशाब किया, उसको बर्दाश्त करके भी मां बाप ने बालक का सेवा किया। अपने आधा पेट खाकर भी उस बालक को पूर्ण भोजन देकर खुश किया। वैसा ही उस जवान लड़का के सामने उनके माता पिता वृद्धावस्था स्वरुप बाला-वस्था में पहुँच गये हैं। वे माता-पिता जितने वृद्ध होते जायेंगे; उनका बालपन उतना ही अधिक होते जायेंगे। उस समय वे अति वृद्ध माता पिता उसी तरह आंगन में, कोठरी कोठरी में, बिछावन में पैखाना; पेशाब किया था।

मां-बाप को जब बच्चा का पैखाना, पेशाब से घृणा नहीं हुआ तो अब जवान बेटा को भी, मां बाप के वृद्ध बाल-पन क पैखाना पेशाब स घृणा नहीं होना चाहिये। उसे अपने हाथ से सफाई कर या अपनी पत्नी के द्वारा सफाई कराकर मां बाप के द्वारा की गई उनके नेकी का बदला जवान बेटा को नेकी से ही चुकाना चाहिए। यह जिन्दगी का धर्म हुआ।

इसी तरह आचरण करके ही, कोई भी मां बाप के ऋण से थोड़ा उऋण हो सकते है। अन्यथा नही।

किन्तु माता पिता के मृत्यु के बाद भी उनके आत्माओं को और उनके ही पूर्वज आत्माओं को परमात्मा के साह हो; अगर कोई पुत्र प्रतिदिन भोजन

अर्पण करें; तो वे जीवन का धर्म निभाते हैं। और माता पिता के ऋण से पूर्ण तथा उऋण हो जाते है। यही पित्रों की पूजा कुलाचार है।

दम्पतियों :- अपने गोद में; अपने घर घर में जो भी चित्त भक्ति अन्तर्बिट होकर पुत्र पुत्री के रुप में प्रगट होवें; उसे कुलधर्म रुपी चालनी फिल्टर (Filter) से ही परिशुद्ध करें। परिशुद्ध कुल के आत्माएँ कभी भी माता पिता के साथ दुराचार नहीं कर सकते है। लेकिन संसार में स्थिति से निबटने के लिए; नामकृत भिन्न धर्मों क बधन से बाहर निकल कर या उसी के अन्दर नाम मात्र के लिए रहकर भी कई समाधान ढूढ़ना ही उचित है।

सब तरह से जीवन के उस भरी समस्या की सारी समाधान कुलाचार में है; कुलधर्म में है। इसी परीप्रेक्षा में हर दम्पतियों को कोई समाधान ढुढ़ता ही है। नही तो; माता पिता को ही जब कुलधर्म का ज्ञान नही हैं तो अपने बालक के सस्कार में कुलाचार का प्रभाव कैसे पडेगा ?

उस परिवार के सदस्यों; के आचार का आधार ही जब नहीं है, तो वह परिवार कैसे कुल धर्म में परिणत हो सकता है ? तो वैसे कुलाचार विहीन परिवार को तो छिन्न भिन्न होना ही है।

अतः माता पिता को ही प्रथम सच्चे अर्थों में कुलाचारी बनना चाहिए, जिससे कि कुलाचार चमत्कारी असर पुस्त-दर पुस्त चलता रहा है।

और सोते (Spring) से निकलती शीतल एवं निर्मल जल की तरह कुलाचारी कुल से भी सतत शीतल और निर्मल आत्माएँ बनती निकलती रहें और पित्तरलोक, स्वर्ग लोक की यात्रा करते हुए ईश्वर के दरबार में पहुँचकर फिर वही आत्माएँ धरती पर के अपने कुल में वर्षा के निर्मल जल की तरह आसमान से टपकती रहे।

और कुल के दम्पतियों के परिवार में निर्मल आत्माओं के आते जाते रहने की यह सिलसिला सतत चलती रहे।

कहां कोई दुख है? संसार में जन्मने; जीने और मरने का कहां कोई दुःख है? कुल में आए थे; कुल में जिए थे, समय आने पर विदा होकर दैविक कुल में चले गये और समय आने पर लौकिक अपने कुल में फिर चले आए। न केवल पृथ्वी ही गोल है, जो एक स्थान से प्रस्थान करे और फिर घूमते-घूमते उसी स्थान पर वापस पहुँचे, वरन जीवन क्रम (Life-cycle) भी गोल ही है।

कुल से कहां किसी के ओझल होने का मौका है जो हम रोयें।

——:०:——

वर्तमान आधुनिक वातावरण में पनपते तथाकथित नामकृत भिन्न धर्मों के मुताबिक यह बात ठीक है, नहीं भी

ठीक है तो थोड़ी देर के लिए मान लिया जाए कि ठीक है—

कि ईश्वर और ईश्वर के पुत्र, आसमान में कहीं आसीन है और धरती पर भक्त; माता पिता, पुत्र-पुत्री, अजनबी उनसे भिन्न हैं और वे सभी अलग-अलग खुद के लाभ के लिए एक स्थान पर या एक घर के अन्दर आसीन हैं। और धरती आसमान के सम्पर्क पदाधिकारी (Lidison Officer) धर्म के ठीकेदार भिन्न पोषाक में खड़े विराजमान ठीक हैं, इसी विचारधारा के आधार पर ही वे अलग अलग प्रार्थना करते हैं। पूजा करते हैं।

परन्तु ऐसी विचारधारा से पुत्र-पुत्री का माँ बाप के कुल के प्रति लगाव (Family attachment) जवानी पहुँचते-पहुँचते ही समाप्त हो जाता है। और वे माँ बाप से विलग स्वतन्त्र व्यवहार करने लगते हैं। माँ बाप का कन्ट्रोल जवान बेटा बेटी पर प्रायः समाप्त हो जाता है।

नामकृत भिन्न धर्मों के अन्दर ऐसी धार्मिक शिक्षा; केवल भिन्न नाम के धार्मिक गुरुओं द्वारा देने का उद्देश्य क्या है; एक समझने का विषय है।

शायद संघ के पदाधिकारी के रुप में प्रत्येक भक्त के लिए अलग-अलग भूमिका निभाने के लिए ही है।

यही कारण है कि नामकृत भिन्न धर्मों के परिवार के सदस्य पुत्र पुत्री बहुत जल्द छिन्न विछिन्न हो जाते हैं। पश्चिमी देशों में व्याप्त सामाजिक वातावरण से मिलान करके देखिये।

माँ-बाप ने पुत्र या पुत्री पैदा किया। पाल पोष करके बड़ा किया, कमाने लायक हो गया और शादी भी कर लिया तो वे माँ बाप से दूर भी हो गये। बृद्धावस्था को प्राप्त माँ बाप भी अपने बैंक में जमा राशि (Bank Balance) के सहारे पर बृद्धावस्थाश्रम (Old age hostel) में प्रवेश पा गये। अब पिता का पुत्रके साथ दर्शन होने का उम्मीद नहीं रहा और दर्शन बिना ही पिता का मृत्यु भी हो गया।

बस पिता व पुत्र का, माता व पुत्री का बस इतना ही छोटा सा बीस पचीस सालों का ही रिस्ता था।

ऐसी पारिवारिक जिन्दगी कुल के परिभाषा में नहीं आता है और ऐसे वातावरण वाले परिवार में कुलाचार भी नहीं हो सकता है। अगर किसी समाज के उपरोक्त जीवन पद्धति ही ठीक है, तो यह उसी तरह सही है जिस तरह पशु पक्षियों का जीवन पद्धति सही है। ऐसा पशु जिन्दगी बिताने वाले के लिए तो कुलधर्म ही क्या अन्य नामकृत भिन्न धर्म भी कुछ नहीं है।

जब कुल का संस्कार से बालक को सुशोभित करना ही नहीं है। उनको कुल का ज्ञानी बनाना ही नहीं है। तो बालक को पैदा करने का क्या-प्रलोभन है ?

क्या-पछताने के लिए क्या मनमुटाव एवं दुश्मनी पैदा करने या किस बात के लिए बालक को पैदा करना है ? माता पिता के युगल जिन्दगी का कुछ दैविक मतलब है। उनके

द्वारा पुनः सृजन (Re production) का कुछ दैविक मतलब है। उस मतलब को समझे बिना बच्चों को पैदा करते जाना उचित नहीं है। धार्मिक दृष्टि से उचित नहीं है।

केवल अकेला स्वार्थ की जिन्दगी के द्वारा पुत्र सृजन करने में पाप है। याद कीजिए :—

आपने खेल-खेल में, जाने अनजाने में, एक क्षुद्र ब्रह्माण्ड का सृजन किया। इसके लिए बृहद् ब्रह्माण्ड में एक कम्पन (Vibration) पैदा हो चुका है।

अस्थायी तौर पर मिले स्वतन्त्र नर-नारी या युगल जिन्दगी के माता पिता-तू समझ ले कि यह तेरा काय कोई मामूली काय नहीं है। बृहद् ब्रह्माण्ड का यह तोफा के रुप में यह तेरा बच्चा, आप ही दोनों के खेल के कारण से आपके गोदी पर आया है सोचिए, ठीक से सोचिए। इस तोफा के प्रति आप दोनों की कितनी बड़ी जिम्मेदारी है।

प्रथम तो उसे मत रुलाईये। द्वितीय में उस बच्चा को पाल पोषकर, पढ़ा-लिखाकर, बड़ा होने तक, कमाने लायक ही बनाना नहीं है; बल्कि उसे कुलाचारी भी बनाना है। उसे माँ को सेवा करने लायक बनाने के साथ-साथ, कुलाचारी की पौराणिक परम्परा को अपने कुल में कायम रखने लायक भी बनाना है। नहीं तो यह दोष लगाना ही बेकार है कि बच्चा बदमाश हो गया।

फिर माता-पिता को पुनर्जन्म की चिन्ता भी तो है। अपना परिवार को आपने अगर कुलाचारी नहीं नहीं बनाया,

तो अन्त समय में अपने घर से अपने परिवार से विदा होने के बाद कहाँ पर ठिकाना मिलेगा ? पौराणिक कुलाचार को छोड़कर धर्म परिवर्तन कर अपना कर अपना ही घर के कुल में वापस आने का जरिया को तो; तोड़कर चले जा रहे हैं। जाने के बाद भटकने के सिवाय अब उपाय क्या है ? जीवित अवस्था तक का ही नहीं, मृत्यु के बाद की अपनी स्थिति के बारे में भी सोचिए।

सब कठिन परिस्थितियों का सब उलझनों का एक छोटा सा, परन्तु बहुत गहन, एक हल कुलधर्म है। उसे न छोड़िये।

पूर्णियां जिला के वायसी थाना अन्तर्गत एक गांव में एक पुत्र के द्वारा, अपने पिता को यह कहते सुना कि आप क्यों ग्राम सलाहकार समिति के सदस्य बनना चाहते हैं ? आपका तो एक धूर भी जमीन नहीं है।

पुत्र से इस बात को सुनकर वृद्ध पिता अवाक हो जवाब दिया कि मेरा एक धूर भी जमीन नहीं है ? वाह ! यह कैसे ?

पुत्र ने कहा कि अब था तो जमींदारी आपकी थी; हाथी, घोड़ा आपका था, हजार बीघा जमीन आपका था। अब तो नहीं है।

सुनकर पिता चुप हो गया। मन ही मन गुनगुनाने

लगा कि अब हमारा जमीन नहीं है। हम सदस्य नहीं बन सकते हैं।

जीवित अवस्था में ही वृद्ध पिता को जवान पुत्र द्वारा इतना बड़ा अपमान, दूसरों के सामने इतना बड़ा अपमान क्या पिता के लिए दुःखदायी नहीं है ?

क्या सुनकर किसी के लिए भी दुःखदायी नहीं हो सकता है ? क्या-वैसा पुत्र भी कोई पुत्र है ?

माता-पिता ने कुल धर्म को नहीं जाना। उसके महत्व को जिन्दगी के ही नहीं वरन जीवन के मतलब के साथ नहीं जोड़ा और उसके मुताबिक आचरण नहीं किया। तो बेचारा पुत्र का क्या दोष है वैसे माता-पिता का वह पुत्र, कैसे माता-पिता का सेवक और फिर कैसे माता-पिता का पुजारी बन सकेगा ?

इसी कारण तो मैं कहता हूँ कि माता-पिता के युगल जिन्दगी का कुछ मतलब है। उनके द्वारा पुनः सृजन का कुछ मतलब है। दैविक मतलब है।

अब मुझ से पूछिए कि कुल धर्म क्यों ?

सीधा सा सरल सा हिसाब है। कागज का पन्ना में या दिमाग का पन्ना में, स से ऊपर ईश्वर का नाम दर्ज कीजिए और सबसे नीचे में अपना नाम दर्ज कीजिए। और इन दोनों नाम के बीच के फासले में, नीचे से ऊपर की ओर बढते हुए पितरालोक में पूर्वजों को ढुढ़िये, उनका नाम दर्ज कीजिए। फिर देव लोक में दोनों को ढुढ़िये और उनका नाम दर्ज कीजिए। स्वग लोक में अवतारीयों, पैगम्बरों और ईश्वर के पुत्रों को ढुढ़िये और उनका नाम दर्ज कीजिए। फिर महादेव के साथ बड़े देवों का नाम दर्ज कीजिए। सबसे उपर में तो ईश्वर का नाम है ही। कोई हिचकियाहट नहीं, कोई भ्रम कोई उलझन नहीं, सभी भिन्न धर्मों के उलझनों का, भ्रमों का, सीधा नहीं। सा सरल सा हिसाब है। कि सबसे आदि ऊपर में ईश्वर और सब से नवीन नीचे आप। इस बीच का बशावली बनाईये।

बहुत ही आनन्दायक है। चारों तरफ से अपने मन को बटोरकर और इधर उधर से अपने आँख को बन्ध कर, एकाग्र चित हो, एकान्त कोठरी में शाम को, थोड़ा ध्यान लगाईये, कि आपका बशावली क्या है ?

आप पायेंगे कि सबसे ऊपर में ईश्वर, अल्हा, (God) इत्यादि संसारिक भाषाओं के नाम भिन्न प्रकार

पुकारे जानेवाले असलियत में परम शक्तिमान (Supreme Power) आपके परम परदादा अगर नहीं है तो क्या है ? और आप उनके (Great, Great, Great Gand Father के सब से अन्तिम पौत्र (Laterl Grand Son) अगर नहीं है तो क्या है ? और उस बीच में आपके कुल के पिता, पिता के पिता आदि पूर्वज, पैगम्बर अवतारी, ईश्वर के पुत्र, महादेव के साथ छोटे बड़े सभी देवता, अगर नहीं है तो कौन कौन है !

आप सहित वे सभी ईश्वर के ही कुल के हैं। इस बिचार धारा की परंपरा जिस शुद्ध कोल परिवार में पनपटी है और जिस सनातन कुल धर्म में पायो जाती है; इस परंपरा के कुल पुत्र के लिए पिता द्वितीय ईश्वर अगर नहीं है तो क्या है ? और माता द्वितीय ईश्वोर अगर नहीं है तो क्या है ?

ऐसे बिचार धारा वाले परिवार के पुत्र, पुत्री, माता पिता को वैसा खर्रा जबाब नही दे सकते है। क्यों कि उनके अन्तःकरण में कुल के परंपरा का असर रहता है।

इसके अलावे कुल धर्मी माता और कुलधर्मी पिता में ऐसी ईश्वरीय शक्ति, जिन्दगी भर के कुल साधना के द्वारा अपने आप विद्यमान होती है, कि वे पुत्र के दुर्व्यवहार से असंतुष्ट होने पर, माता पिता के दुःखित मुंह से निकली आह आप में परिणत हो जाता है; जो पुत्र के जिन्दगी को अविलंब कष्टमय बना सकता है। इस रहस्य का

समझने वाला पुत्र कभी माता पिता के साथ दुर्व्यवहार करेगा, ऐसा सम्भव नहीं है ।

यह कुलाचार एक सिलसिला है । ईश्वर से आप तक की एक गोलाकार सिकड़ी (round chain) है । जिस सिकड़ी के सब से नीचे; अभी सब से नवीनतम कड़ी में आप जुड़े हैं । आपके बाद फिर नवीनतम कडी मे आपके पुत्र जुड़ें हैं फिर आपके पुत्र के बाद, आपके पौत्र जुड़ेंगे । और सभी नवीनतम कुल के सदस्य वाले पुत्र-पौत्र पूर्वजों की आत्माएं ही अन्तर्विष्ठ होती जाएगी । एक दिन आपके आत्मा को भी, उन्ही पूर्वजों की तरह अपने ही कुल में नया शरीर के साथ जन्म लेने का मौका मिलगे । और यह कुल में ही आने जाने का कुल के आत्माओं का एक गोलाकार सिलसिला हमेशा चला रहता है ।

जहाँ जिस नामकृत भिन्न धर्म में कुलाचार की शिक्षा नहीं है, वहाँ माता पिता का तिरस्कार हो जाता है। कुल का चक्राकार सिकड़ी कृपा सिलसिला ईश्वर की कृपा से चलने वाली, और ईश्वर तक चलने वाली ईश्वर का ही सिलसिला है । इस कारण माता पिता का तिरस्कार ही ईश्वर के सिलसिला का तिरस्कार है । उनकी धर्म और सही धर्म गुरु के चुनाव के बिना कुल का सिलसिला

टूट जाता है । और कुल जब टूट जाता है । तो कुल वहा समाप्त हो जाता है ।

तब कुल के पूर्वजों के सारी आत्माऐं घबरा जाते हैं । इधर उधर भटकने लगते हैं । पित्तर लोक में, देव लोक में, दाना पानी के अर्पण के बिना, भूखे प्यासे परेशान हो जाते हैं । और कुलाचार छूट जाने के कारण, अब वे अपने ही पुत्र पौत्रों के घर में या घर के रसोई में नही आ पाते हैं । उनका ठिकाना खतम हो जाता है । इसी तरह परेशान; क्रोधित, और असंतुष्ठ पित्त अंत में अपने ही पुत्र पौत्रों के घर में तरह तरह की बिमारियाँ फैलाते है । तरह तरह से धन जन की हानि पहुंचाते हैं । और परिवार के कर्त्ता एवं परिवार के सदस्य अब उस घर में सुख चैन से नहीं रह सकते है । रामो की ये बातें झूठ नहीं हैं ।

फिर वैसा परिवार करेगा क्या ?

जब नामकृत भिन्न धर्म की ही वैसी शिक्षा है । तो पुत्र अपने स्थान से ईश्वर के पत्र तक का एक छलांग मार रहा है । पुत्री अपने स्थान से अपने लिए ईश्वर के पुत्र तक का एक छलाँग मार रही है । पिता अपने स्थान से अपने लिए, ईश्वर के पुत्र तक का छलाँग मार रहे हैं । और पत्नि अपने स्थान से अपने ही लिए ईश्वर के पुत्र तक का एक छलाँग मार रहे हैं । या ईश्वर के पुत्र के द्वारा या पैगम्बर के द्वारा या अवतारी

समझने वाला पुत्र कभी माता पिता के साथ दुर्व्यवहार करेगा, ऐसा सम्भव नहीं है ।

यह कुलाचार एक सिलसिला है । ईश्वर से आप तक की एक गोलाकर सिकड़ी (round chain) है । जिस सिकड़ी के सब से नीचे; अभी सब से नवीनतम कड़ी में आप जुड़े हैं । आपके बाद फिर नवीनतम कडी में आपके पुत्र जुड़े हैं फिर आपके पुत्र के बाद, आपके पौत्र जुड़ेंगे । और सभी नवीनतम कुल के सदस्य आमे पुत्र-पौत्र पूर्वजों की आत्माएं ही अन्तर्विष्ठ होती जाएगी । एक दिन आपके आत्मा को भी, उन्ही पूर्वजों की तरह अपने ही कुल में नया शरीर के साथ जन्म लेने का मौका मिलगे । और यह कुल में ही आने जाने का कुल के आत्माओं का एक गोलाकार सिलसिला हमेशा बना रहता है ।

जहाँ जिस नामकृत भिन्न धर्म में कुलाचार की शिक्षा नहीं है, वहाँ माता पिता का तिरस्कार हो जाता है। कुल का चक्राकार सिकड़ी रूपी सिलसिला ईश्वर की कृपा से चलने वाली, और ईश्वर तक चलने वाली, ईश्वर का ही सिलसिला है । इस कारण माता पिता का तिरस्कार ही ईश्वर के सिलसिला का तिरस्कार है । कुलाचारी धर्म और सही धर्म गुरु के चुनाव के बिना कुल का सिलसिला

टूट जाता है । और कुल जब टूट जाता है । तो कुल वहीं समाप्त हो जाता है ।

तब कुल के पूर्वजों के सारी आत्माऐं घबरा जाते हैं । इधर उधर भटकने लगते हैं । पित्तर लोक में, देव लोक में, दाना पानी के अर्पण के बिना, भूखे प्यासे परेशान हो जाते हैं । और कुलाचार छूट जाने के कारण, अब वे अपने ही पुत्र पौत्रों के घर में या घर के रसोई में नहीं आ पाते हैं । उनका ठिकाना खतम हो जाता है । इसी तरह परेशान; क्रोधित, और असंतुष्ठ पित्तर अंत में अपने ही पुत्र पौत्रों के घर में तरह तरह की बिमारियाँ फैलाते है । तरह तरह से धन जन की हानि पहुंचाते हैं । और परिवार के कर्त्ता एवं परिवार के सदस्य अब उस घर में सुख चैन से नहीं रह सकते है । रामो की ये बातें झूठ नहीं हैं ।

फिर वैसा परिवार करेगा क्या ?

जब नामकृत भिन्न धर्म की ही वैसी शिक्षा है । तो पुत्र अपने स्थान से ईश्वर के पुत्र तक का एक छलाँग मार रहा है । पुत्री अपने स्थान से अपने लिए ईश्वर के पुत्र तक का एक छलाँग मार रही है । पिता अपने स्थान से अपने लिए, ईश्वर के पुत्र तक का छलाँग मार रहे हैं । और पत्नि अपने स्थान से अपने ही लिए ईश्वर के पुत्र तक का एक छलाँग मार रहे हैं । या ईश्वर के पुत्र के द्वारा या पैगम्बर के द्वारा या अवतारी

समझने वाला पुत्र कभी माता पिता के साथ दुर्व्यवहार करेगा, ऐसा संभव नहीं है।

यह कुलाचार एक सिलसिला है। ईश्वर से आप तक की एक गोलाकर सिकड़ी (round chain) है। जिस सिकड़ी के सब से नीचे; अभी सब से नवीनतम कड़ी में आप जुड़े हैं। आपके बाद फिर नवीनतम कडी में आपके पुत्र जुड़े हैं फिर आपके पुत्र के बाद, आपके पौत्र जुड़ेंगे। और सभी नवीनतम कुल के सदस्य आगे पुत्र-पौत्र पूर्वजों की आत्माएं ही अन्तर्विष्ठ होती जाएगी। एक दिन आपके आत्मा को भी, उन्हीं पूर्वजों की तरह अपने ही कुल में नया शरीर के साथ जन्म लेने का मौका मिलेगे। और यह कुल में ही आने जाने का कुल के आत्माओं का एक गोलाकार सिलसिला हमेशा बना रहता है।

जहाँ जिस नामकृत भिन्न धर्म में कुलाचार की शिक्षा नहीं है, वहाँ माता पिता का तिरस्कार हो जाता है। कुल का चक्राकार सिकड़ी रूपी सिलसिला ईश्वर की कृपा से चलने वाली, और ईश्वर तक चलने वाली, ईश्वर का ही सिलसिला है। इस कारण माता पिता का तिरस्कार ही ईश्वर के सिलसिला का तिरस्कार है। कुलकी धर्म और सही धर्म गुरु के चुनाव के बिना कुल का सिलसिला

समझने वाला पुत्र कभी माता पिता के साथ दुर्व्यवहार करेगा, ऐसा सम्भव नहीं है।

यह कुलाचार एक सिलसिला है। ईश्वर जो आप तक की एक गोलाकर सिकड़ी (round chain) है। जिस सिकड़ी के सब से नीचे; अभी सब से नवीनतम कड़ी में आप जुड़े हैं। आपके वाद फिर नवीनतम कडी मे आपके पुत्र जुड़े हैं फिर आपके पुत्र के वाद, आपके पौत्र जुड़ेंगे। और सभी नवीनतम कुल के सदस्य आमे पुत्र-पौत्र पूर्वजों की आत्माएं ही अन्तर्विष्ठ होती जाएगी। एक दिन आपके आत्मा को भी, उन्ही पूर्वजों को तरह अपने ही कुल में नया शरीर के साथ जन्म लेने का मौका मिलगे। और यह कुल में ही आने जाने का कुल के आत्माओं का एक गोलाकार सिलसिला हमेशा बना रहता है।

जहाँ जिस नामकृत भिन्न धर्म में कुलाचार की शिक्षा नहीं है, वहीं माता पिता का तिरस्कार हो जाता है। कुल का चक्राकार सिकड़ी कृपा सिलसिला ईश्वर की कृपा स चलने वाली, और ईश्वर तक चलने वाली ईश्वर का ही सिलसिला है। इस कारण माता पिता का तिरस्कार ही ईश्वर के सिलसिला का तिरस्कार है। जब धर्म और सही धर्मगुरु के चुनाव के बिना कुल का सिलसिला

टूट जाता है। और कुल जब टूट जाता है। तो कुल वहीं समाप्त हो जाता है।

तब कुल के पूर्वजों के सारी आत्माएं घबरा जाते हैं। इधर उधर भटकने लगते हैं। पित्तर लोक में, देव लोक में, दाना पानी के अर्पण के बिना, भूखे प्यासे परेशान हो जाते हैं। और कुलाचार छूट जाने के कारण, अब वे अपने ही पुत्र पौत्रों के घर में या घर के रसोई में नही आ पाते हैं। उनका ठिकाना खतम हो जाता है। इसी तरह परेशान; क्रोधित, और असंतुष्ठ पित्त अंत में अपने ही पुत्र पौत्रों के घर में तरह तरह की बिमारियाँ फैलाते है। तरह तरह से धन जन की हानि पहुंचाते हैं। और परिवार के कर्त्ता एवं परिवार के सदस्य अब उस घर में सुख चैन से नहीं रह सकते है। रामो की ये बातें झूठ नहीं हैं।

फिर वैसा परिवार करेगा क्या ?

जब नामकृत भिन्न धर्म की ही वैसी शिक्षा है। तो पुत्र अपने स्थान से ईश्वर के पुत्र तक का एक छलाँग मार रहा है। पुत्री अपने स्थान से अपने लिए ईश्वर के पुत्र तक का एक छलाँग मार रही है। पिता अपने स्थान से अपने लिए, ईश्वर के पुत्र तक का छलाँग मार रहे हैं। और पत्नि अपने स्थान से अपने ही लिए ईश्वर के पुत्र तक का एक छलाँग मार रहे हैं। या ईश्वर के पुत्र के द्वारा या पैगम्बर के द्वारा या अवतारी

क द्वारा ईश्वर तक का भी अगर वे छलाँग मार रहे हैं तो अपने स्थान से अपने ही लिए छलाँग मार रहे हैं ।

सब अपना अपनी लगे हुए हैं । किसका कौन परवाह करते हैं । और कौन किनका उस छलाँग में मददगार है ? ये इस तरह का सारा आवरण हरेक भिन्न धर्मों के अन्दर केवल अच्छा से चूसने के लिए ही बनाए गए हैं । धर्म के ठीकेदारों के द्वारा हरेक व्यक्ति को; व्यक्तियों के परीवारों को अच्छा से चूसने के लिए ही बनाए गए हैं ।

इससे न तो धर्म गुरु को और न अनुयात्रियों को किसी को भी दैहिक लाभ होने की उम्मीद नहीं है । भिन्न धर्मों के अन्दर अन्दर अभी तक किन्ही को दैविक लाभ हुआ भी नही कम से कम मुझको तो सुनने को नहीं मिला है । इसके विपरीत एक कुलाचारी पुत्र के लिए एक कुल योगी के लिए और अपने अपने स्थान से अपना अपनी छलांग उचित नहीं है । कुलाचार तो कुल साधना है । कुल ब्रह्म का कुल ईश्वर का साधना है । इस कारण कोई पुत्र कुलाचार की चक्राकार सिकड़ी के कड़ियों को तोड़ना नही चाहेंगे जिसमें सभी के साथ वे खुद भी जुड़े हैं । अतः कुल के साथ ही पूजा करेंगे । मैंने पहले ही प्रकाश कर दिया है कि आपका सृजन किसी के द्वारा हुआ है । आप किसी के द्वारा आए हैं । और वह द्वारा युगल जिंदगी के आपके

माता पिता हैं । आपके कल्याण से संबंधित उनके इस जन्माने कार्य के लिए, क्या आप कृतज्ञ नही हैं ?

आप वह पलका तारा नही; जो, व्योम से नीचे सीधे धरती पर गिर पडता है । आप जब माता पिता के द्वारा आए हैं तो आपको परम पिता परमेश्वर एवं परम माता परमेश्वरी के पांस निज माता पिता के द्वारा ही पहुंचना उचित है । इसमे दैविक लाभ निश्चय है । और अपना अपनी पूजा प्रार्थना करना एक बेसहारा और बेतुकी प्रभास है । इसमें दैविक लाभ की उम्मीद नही है दैविक लाभनिश्चित नही है आपके कुल परिवार के कुछ पूर्वज सदृश्य आत्माएँ (Ancestor) आगे बढ़ चुके हैं । परम माता परम पिता तक पहुंचने के रास्ते में है । आपके परिवार के कुछ सदृस्य शरीर रुप में घर पर है । आपके वंश की एक लम्बीक तार है । सभी उस महान तीर्थ यात्रा के रास्ता में हैं । एक के बाद ऐक चल रहे है । अगुआ रास्ता दिखाते जा रहे हैं । कुल परिवार का यह चाल भिन्न धर्म के अन्य सभी चालसे उत्तम चाल है

मार्ग दर्शक के रुप में पूर्वज आत्माएँ एक के बाद ऐक आगे है । मानो एक कुल की सीढ़ी पर व्योम की ओर बढ़ते जा रहे हैं । भटकने का कोई गुंजाइश नही है । दादा-दादी; पर दादा-पर दादी की आत्माएँ आगेबढ़ चुके हैं और परम पिता परमेश्वर का धाम पहुँचकर उनका दर्शन कर उनका आशीर्वाद लेकर पूर्णत या निर्मल आत्माओं के रुप में; कुछ काल बाद, धरती

पर के आपके घर वश में ऐक पुत्र पौत्र, पौत्री के
शरीर रूप में अवतावत होंगे। और कुल परिवार में
शामिल होते जायेंगे। और आपके कुल परिवार में
आपके कुल आत्माओं का निर्मल एव असीम आनन्द-
दायक असीम कालतक चलता रहेगा।

यह कुल परिवार का कितना सुन्दर जीवन चक्र (Life
eycle) होगा कुछ वर्णन नही किया जा सकता हैं। इस
कुल जीवन चक्र का आनन्द तो, इसी कुल परिवार के
लोग ही अनुभव कर सकगे जो, कुलाचारी, ठेठ कुलाचारी
है।

वैसे कुलज्ञ, वैसे कुलीन, कुल-धर्मी परिवार का पुत्र
एव पुत्री, कभी भी माता पिता का तिरस्कार नही कर
सकते हैं। और न वे माता पिता को अपने व्यवहार से
नाखुश कर सकते है। वे कुल परिवार के किसी भी
सदस्य का तिरस्कार नही कर सकते है। वे तो माता पिता
का कुवलों के आत्माओं, देवों एवं ईश्वर के संग,
हमेशा पूजा (Worship) करने के लिए उद्दत रहते है।

वैसा कुलाचारी परिवार, जीवित अवस्था में और
मृत्यु के बाद में भी, आनन्दोत जीवन, सुख शांति का
जीवन; अगर नही बिताएंगे तो क्या बितायेंगे ?

अतः आपके लिये, अब क्या, यह समझना कठिन
होगा कि, आव कहां से आए, आकर कैसे जीते हैं, जीने

का समय अन्त होने पर कहां जाते हैं, और कहां जाकर
किसमें प्रवेश करते हैं।

आपके कुल का झलक तो स्वर्ग में और नरक में भी
आपके नजर के ही सामने हो जाता है। तो जन्म मृत्यु
और पुनर्जन्म का उलझन ही क्या कोई उलझन रह
जाता है।

अपन कुल मे प्यारा से प्यारा, तीव्र से तीव्र बुद्धि
वाला, सुन्दर से सुन्दर पुत्र पुत्रियो का अवतरण होगा।
वश में सुख शांति होगी। परिवार के भरण पोषण
के लायक, धन दौलत मे कमी नही होगी। प्यारा से
प्यारा पालतु जानवरों, और पालतु पंछियों की भरमार
होगी।

अतः हे कोल आदिवासियों, अन्य सभी आदिवा-
सियों; एवं अन्य सभी भाई बन्धुओं, आप सही कुला-
चारी बनकर; कुलधर्म के ईश्वरीय नियमों का सही पालन
कर, परीक्षा करके तो देख लीजिए। कहीं रामो झूठ
तो नहा बोलता है ?

हे कोल आदिवासियों ? तेरे गुप्त कुल धर्म में
मुझको कही भी दोष नही दिखाई देता है। फिर भी
आप इससे भागते है। आपको अगर कहीं दोष दिखाई
देता हो, तो कृपया मुझको सुनाने की कोशिश करेंगे।

जहाँ तहाँ हथेली जोड़ कर, या हथेली फैलाकर मांगने
से, घर से बाहर सामुहिक भक्ति गानों में शामिल होने

पर के आपके घर वंश में ऐक पुत्र पौत्र, पौत्री के शरीर रूप में अवतरित होंगे। और कुल परिवार में शामिल होते जायेंगे। और आपके कुल परिवार मे आपके कुल आत्माओं का निर्मल एव असीम आनन्द-दायक असीम कालतक चलता रहेगा।

यह कुल परिवार का कितना सुन्दर जीवन चक्र (Life cycle) होगा कुछ वर्णन नही किया जा सकता हैं। उस कुल जीवन चक्र का आनन्द तो, उसी कुल परिवार के लोग ही अनुभव कर सकते जो, कुलाचारी, ठेठ कुलाचारी है।

वैसे कुलज्ञ, वैसे कुलीन, कुल-धर्मी परिवार का पुत्र एव पुत्री, कभी भी माता पिता का तिरस्कार नही कर सकते हैं। और न वे माता पिता को अपने व्यवहार से नाखुश कर सकते है। वे कुल परिवार के किसी भी सदस्य का तिरस्कार नही कर सकते है। वे तो माता पिता का पुरखों के आत्माओं, देवों एवं ईश्वर के संग, हमेशा पूजा (Worship) करने के लिए उद्यत रहते है।

वैसा कुलाचारी परिवार, जीवित अवस्था में और मृत्यु के बाद में भी, आनन्दीत जीवन, सुख शांति का जीवन; अगर नही बिताएंगे तो क्या बितायेंगे ?

अतः आपके लिये, अब क्या, यह समझना कठिन होगा कि, आप कहां से आए, आकर कैसे जीते हैं, जीने

का समय अन्त होने पर कहां जाते हैं. और कहां जाकर किसमें प्रवेश करते हैं।

आपके कुल का झलक तो स्वर्ग में और नरक में भी आपके नजर के ही सामने हो जाता है। तो जन्म मृत्यु और पुनर्जन्म का उलझन ही क्या कोई उलझन रह जाता है।

अपने कुल मे प्यारा से प्यारा, तीव्र से तीव्र बुद्धि वाला, सुन्दर से सुन्दर पुत्र पुत्रियों का अवतरण होगा। वंश में सुख शांति होगी। परिवार के भरण पोषण के लायक, धन दौलत मे कमी नही होगी। प्यारा से प्यारा पालतू जानवरों, और पालतू पंछियों की भरमार होगी।

अतः हे कोल आदिवासियों, अन्य सभी आदिवासियों; एवं अन्य सभी भाई बन्धुओं, आप सही कुलाचारी बनकर; कुलधर्म के ईश्वरीय नियमों का सही पालन कर, परीक्षा करके तो देख लीजिए। कहीं रामो झूठ तो नहीं बोलता है ?

हे कोल आदिवासियों ? तेरे गुप्त कुल धर्म में मुझको कहीं भी दोष नही दिखाई देता है। फिर भी आप इससे भागते है। आपको अगर कहीं दोष दिखाई देता हो, तो कृपया मुझको सुझाने की कोशिश करेंगे।

जहाँ तहाँ हथेली जोड़ कर, या हथेली फैलाकर मांगने से, घर से बाहर सामुहिक भक्ति गानों में शामिल होने

से, सुख शांति एव धन दौलत एवं पाप क्षमा की जब आशा की जा सकती है, तो क्या उससे भी कही अधिक सुख शांति एव धन दौलत की प्राप्ति एव पाप क्षमा को आशा कुलाचार के द्वारा नही की जा सकती है ?

काम, क्रोध; लोभ, मोह से परे, जिंदगी तथा जीवन के लक्ष्य धर्म अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति; एक साथ चारों की प्राप्ति के लिये, किसी के मध्यस्थता की आवश्यकता नही है खुद आपका अपना कुलयोगी वाला जिंदगी ही काफी है ।

बहु जन्मार्जितैः पूण्यैः कुलांचारे मतिः भवेत ।
कुलाचारेण पुतात्मा, साक्षात शिव मयो भवेता ॥

(बहुत से पूव जन्मों के अर्जित पूण्यों के द्वारा ही कुलाचार के तरफ मन का बुद्धि का; झुकाव होता है । कुलाचार के द्वारा शुद्ध आत्मा शिव तुल्य हो जाता है) जब आत्मा ही शिव तुल्य हो जाता है तो, उससे अधिक उपलब्धि की जरुरत ही क्या है ।

—);०:(—

कुलधर्म का संदेश

सारे ब्रह्माण्ड को छानकर लाया हूँ एक सन्देश ।
कृपा उनकी ही पाकर सुनाता हूँ वह सन्देश ॥१॥
यह तोफा है उनका कुलज्ञ कहते जिसे कुलेश ।
निश्चय ही उसे पाकर मिटेगी तुमारी कलेश ॥२॥

कुलाचारी से बढ़कर कोइ भिन्न धर्म नही है ।
मातृ पितृ सेवा से बढ़कर कोई कर्म नही है ॥३॥
माता पिता को त्याग कर तुम न जावो परदेश ।
रोते हैं सिसक सिसक कर पत्र हैं परदेश ॥४॥
अपने बदले में पत्नि को छोड़ना अपना देश ।
पित्तरों की पूजा उससे करावो कम-व.-वेश ॥५॥

—);०:(—

झलक (Flash)

धर्म कागज के पन्नों में नही सीमित किया जा सकता है । और न उसका व्याख्या ही कागज के पन्नों में समाप्त किया जा सकता है । धर्म तो सृष्टि के पन्नों में लिखा हुआ है । और उसे हृदय के तल पर ही उतारा जा सकता है ।

उसे पढ़ने के लिये, उसे अनुभव करने के लिये क्षमता की आवश्तकता है । अतः आप के लिये उचित यही है कि अपने अन्दर सृष्टि को समझने लायक क्षमता विकास करें ।

"रामो"

[भाग—एक]

प्रथम संस्करण—नवम्बर '७७—१०००

कीमत—तीन रुपये

इसके आगे भाग दो में पढ़ें।

मुद्रक—भारती प्रिन्टिंग प्रेस
कटिहार (बिहार)